प्रकाशक :

रोशनलाल जैन

संचालक :

जंबू प्रकाशन
बोरड़ी का रास्ता, जयपुर।

प्रथम संस्करण
जुलाई १९६६

मूल्य तीन रुपये पचास पैसे

मुद्रक :
डायमण्ड प्रिंटिंग प्रेस,
गोपालजी का रास्ता,
जयपुर।

भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक राजस्थान के रीतिरिवाज मैंने देखी। रीतिरिवाजों पर हिन्दी में प्राय: पुस्तक नहीं है। श्री सुखवीरसिंह गहलोत ने यह पुस्तक लिख कर अभिनन्दनीय कार्य किया है। इस पुस्तक में राजस्थान में प्रचलित प्राय: सभी रीतिरिवाजों का संक्षिप्त परिचय दे दिया है। यह पुस्तक आवाल वृद्ध सभी के पढ़ने योग्य है। पुस्तक की भाषा सरल है इसलिए कम पढ़े लिखे भी इससे लाभ उठा सकते हैं, विशेषकर नव साक्षर प्रोढ़ों को ये पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये।

दामोदर व्यास

जयपुर
दिनांक ५-७-६६,

दो शब्द

राजस्थान के रीति रिवाजों पर कोई पुस्तक अब तक उपलब्ध नहीं थी। मेरे पिता (स्वर्गीय) श्री जगदीश सिंहजी गहलोत ने लगभग ४० वर्ष पूर्व एक पुस्तक "मारवाड़ के रीति रिवाज" लिखी थी। अपने विषय की सम्भवतः वह पहली पुस्तक थी। उस पुस्तक को अप्राप्य हुए भी काफी वर्ष हो गये हैं। ई० सन् १९४८ में जब कांग्रेस का ५५ वां अधिवेशन जयपुर में हुआ था तब 'विश्वमित्र' पत्रिका ने राजस्थान पर एक विशेषांक प्रकाशित किया था। तब मैंने भी (लगभग ५००० शब्दों का) एक लेख 'राजस्थान के रीति-रिवाज' लिखा था। उसी लेख को विस्तृत कर एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित करने की मेरी बहुत दिनों से इच्छा थी। इसके लिये काफी समग्री भी इकट्ठी की, लेकिन समयाभाव के कारण लिख न सका। पिछले वर्ष मेरे सहयोगी श्री दामोदर प्रसाद मिश्र ने विशेष आग्रह किया कि मैं इस सामग्री से शीघ्र ही पुस्तक तैयार करूं। जो कुछ कमी रह गई थी वह भी उन्होंने पूर्ण करदी। परिणाम आप के सामने है।

आपको इस पुस्तक में राजस्थानी संस्कृति की एक झांकी मिलेगी। राजस्थान में आज भी सैंकड़ों वर्ष पूर्व के रीतिरिवाज -अच्छे व बुरे- प्रचलित हैं। सच तो यह है कि भारत की संस्कृति तथा रीतिरिवाजों को काफी हद तक राजस्थान ने ही बनाये रखा है। आशा है, राजस्थान के रीतिरिवाजों को

जानने के लिये पाठक इसे उपयोगी पायेंगे। सम्भव है इस पुस्तक में कुछ कमियां पाठक पावें।

अतः पाठको से निवेदन है कि वे इस विषय में आवश्यक सुझाव देंगे। मैं ऐसे पाठको का हृदय से आभारी रहूँगा।

गहलोत निवास
जोधपुर
जुलाई, २-१९६६।

सुखवीर सिंह गहलोत

विषय-सूची

प्राचीन रीतिरिवाज

प्रत्येक देश व जाति की उन्नति और अवनति बहुत कुछ उसकी प्रथाओं व रीति रिवाजों पर निर्भर होती है। इन पर विचार करने से केवल देश या जाति की पूर्व दशा का अनुमान ही नहीं किया जा सकता है अपितु यह भी पता चल सकता है कि उसका भविष्य क्या होगा ? यही कारण है कि हमारे विद्वान व समाज सुधारक रीति रस्मों के मनन व सुधार पर ज्यादा जोर देते रहे हैं।

रीति रस्मों से तात्पर्य हम उन कर्त्तव्यों और कार्यों से भी ले सकते हैं जिनका विशेष अवसरों पर करना प्रत्येक देश व जाति की परम्परा के लिहाज से आवश्यक समझा जाता है और जिन्होंने इसी कारण से एक खास रूप व नाम ग्रहण कर लिया है।

हमारे रीति रस्मों में वैदिक और लौकिक दोनों रीतियां मिली हुई हैं। समय के परिवर्तन के साथ वैदिक रीति रस्मों में काफी हेर फेर हो चुके हैं। ये हेर फेर कई रीतयों में तो इतने अधिक हो चुके हैं कि वे सर्वथा नवीन रूप धारण कर चुके हैं। कई रस्मों मे आडम्बर की मात्रा अनावश्यक रूप में बढ़ चुकी है। ये आडम्बर विभिन्न जातियों ने अपनी विशिष्टता जताने के लिए रीति रस्मों में अपना लिए हैं। कई रीति रिवाज जातीय इतिहास से भी सम्बन्धित हैं। परन्तु हमारे मूल भूत रिवाज प्राचीन वैदिक समाज की ही देन हैं जहां से इनकी परम्परा का शिलान्यास हुआ है।

प्राचीन काल के वैदिक पद्धति से निर्धारित रीति रिवाजों को ही संस्कार के नाम से कहा गया है। वे सोलह संस्कार निम्न प्रकार हैं।

१. गर्भाधान संस्कार

यह सबसे पहला संस्कार है। कहीं कहीं इसको सोहागरात भी कहते हैं जो गौने यानि मुकलावा के पीछे होती है। वैदिक रीति से विवाह के तीन रात पश्चात् चौथी रात को पति अग्नि में पके भोजन की आठ आहुतियाँ अग्नि, वायु, सूर्य, अर्यमा, वरुण, पूषा, प्रजापति, एवं स्विष्टकृत को देता है। इसके उपरांत वह अध्यण्डा की जड़ को कूट कर उसके जल को पत्नी की नाक में छिड़कता है। तब वह पत्नि को छूता है। संभोग करते वक्त "तू गन्धर्व विश्वासु का मुख हो" कहता है फिर वह श्वास में ओ (पत्नी का नाम लेकर) वीर्य डालता है। एवं पुत्र रत्न प्राप्ति की कामना करता है। प्राचीन काल में इस क्रिया का धर्म से सम्बन्ध माना जाता था अत: ऐसे समय में मन्त्रोच्चारण भी किया जाता था। प्रत्येक संस्कार के पहले होम, इष्ट देव पूजन, पुण्याहवाचन आदि कृत्य आवश्यक हैं।

२. पुंसवन संस्कार

यह संस्कार पुत्र प्राप्ति की कामना पूर्ति के लिए किया जाता है। पुंसवन शब्द का अर्थ भी लड़के को जन्म देना है। गर्भ के तीसरे मास में पुष्य नक्षत्र के दिन स्त्री को गत पुनर्वसु नक्षत्र में उपवास कर लेने के बाद अपने ही रंग के बछड़े वाली गाय के दही में दो दो कण सेम एवं एक कण जौ का, तीन बार दिया जाता है एवं पुत्र रत्न प्राप्ति की कामना की जाती है।

कहीं कहीं 'सतमासे की गोद भरना' भी इस संस्कार को कहते हैं। गर्भवती स्नान करके अच्छे वस्त्र पहन लेती है फिर और घर की कोई बड़ी बूढ़ी मेवा, खोपरा मिष्ठान्न, पकवान्न आदि उसकी गोद में डाल कर आशीर्वाद देती है। तत्पश्चात कुमारी कन्याओं के साथ गर्भवती भोजन करती है।

३. सीमन्तोन्नयन

यह संस्कार गर्भाधान के चौथे मास में किया जाता है। क्षय होते हुए चन्द्रमा के चौदहवें दिन जब चन्द्रमा किसी पुरुष नक्षत्र के साथ ही इसे मनाया जाता है। तब अग्नि स्थापित की जाती है और अग्नि के पश्चिम में वृषभ (बैल) का चर्म रखा जा कर आज्य (निर्मली कृत घृत की) आठ आहुतियां दी जाती हैं।

इस संस्कार का सिर्फ सामाजिक एवं औत्सविक महत्व ही माना गया है। खास तौर से गर्भिणी को प्रसन्न करना ही इसका उद्देश्य है। अब कहीं कहीं इसे "अठमासे की गोदो" भी कहते हैं। इस समय गर्भिणी को पकवान्न आदि खिलाये जाते हैं।

४. जात कर्म

पुत्रोत्पत्ति होते ही यह संस्कार मनाया जाता है। इसका उद्देश्य उत्पन्न होने वाले पुत्र के प्रति यह कामना प्रकट करना है कि वह पवित्र, गौरव पूर्ण, धनधान्य से परिपूर्ण वीर एवं अनेक पशु धारण करने वाला हो। इस संस्कार के विभिन्न भागों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है—

(क) होम—जन्म के समय अग्नि में श्वेत रंग की सरसों तथा चावल डाले जाते हैं एवं यह कृत्य जन्म के दस

दिन तक लगातार प्रति दिन प्रातः काल किया जाता है।

(ख) मेधा जनन—इस किया में शिशु के दाहिने कान में मन्त्रोच्चारण किया जाता है एव बच्चे को दही, घृत आदि खिलाया जाता है।

(ग) आयुष्य—बच्चे की लम्बी आयु हो अतः उसकी नाभि पर मन्त्रोच्चारण किया जाता है।

(घ) अंशाभिमर्शन—इस क्रिया में बच्चे के बाप द्वारा उनके दोनों कंधों को छुआ जाता है।

(ङ) स्तन-प्रतिधान—इस क्रिया में नवजात बच्चे को को स्तनपान कराने की क्रिया की जाती है।

(च) देशाभिमन्त्रण—इस क्रिया में नवजात बच्चा जहां उत्पन्न होता है उस स्थान को छुआ जाता है।

५. नामकरण

यह सस्कार शिशु का नाम रखने से सम्बन्धित है। जो जन्म के १० वें दिन से १२ वे दिन तक संपादित किया जाता है। वैसे दिनों का पालन एकरूपता से नहीं किया जाता है बल्कि किसी भी शुभ दिन, घड़ी एवं नक्षत्र में नामकरण संस्कार कर लिया जाता है। नामकरण के लिये बतलाया गया है कि—

(१) पुरुष का नाम दो, चार या सम संख्या के अक्षरों वाला होना चाहिये।

(२) नाम का आरंभ उच्चारण करने योग्य तथा अर्धस्वर वाला अवश्य हो।

(३) नाम के अन्त में विसर्ग तथा पूर्व में लम्बा स्वर अवश्य हो।

(४) नाम के दो भाग होने चाहिये पहला संज्ञा तथा दूसरा क्रिया।

(५) नाम कृत से बनना चाहिये न कि तद्धित से।

(६) नाम में 'सु' उपसर्ग होना चाहिये।

(७) नाम किसी देवता, ऋषि, पूर्व पुरुष से निःसृत होना चाहिये।

(८) नाम पिता के नाम पर नहीं होना चाहिये।

(९) बोलता नाम बच्चे के गोत्र से सम्बन्धित होना चाहिये अथवा जन्म नक्षत्र से सम्बन्धित होना चाहिये।

लड़कियों के नाम के सम्बन्ध में भी विशिष्ट नियमों का निर्माण हुआ है। विषम अक्षर संख्या होनी चाहिये अर्थात तीन या पांच अक्षरों वाला नाम हो। एवं नाम के अन्त में 'आ' की मात्रा हो। लड़के और लड़कियों दोनों के ही माता या पिता के नाम से सम्बन्धित नाम का अर्थ यह है कि वह अच्छे वंश का सूचक है, यथा दशरथ-पुत्र, जनकतनया आदि।

६. कर्ण छेद

यह संस्कार जन्म के तीसरे से पांचवें वर्ष तक किया जाता है। स्त्रियों का कर्ण एवं नासिका छेदन का संस्कार सब जगह सब जातियों में एक सा नहीं होता है। जोधपुर, बीकानेर, आदि के कतिपय स्थानों में उच्च जातियां जैसे ब्राह्मण, अग्र-

वाल, राजपूतों, में यह प्रचलित है। नासिका छेदन कराने पर नाक में सुनहरी बाली वा लोंग (कांटा) नामक गहना पहना जाता है। इसी तरह कान के लटकते हुए भाग में पतले तार से छेद कर उसे गोलाकार बांध दिया जाता है। आजकल यह कार्य सोनार करता है।

७. निष्क्रमण

इस संस्कार में जच्चा (जातकर्म के २१ दिन बाद व किन्हीं जातियों में ४० दिन बाद) सामान्य जीवन में आ जाती है। नाखून कटा कर, स्नान कर, नए वस्त्र पहनती है। पहले कुछ स्त्रियों के साथ इष्ट देव के मन्दिर जाती है, वहां से आकर घर में साधारण रीति से रहने और काम काज करने लगती है।

८. अन्न-प्राशन

बच्चा जब छः महिने का हो जाता है तो उसकी आंत भी अन्न पचाने योग्य हो जाती है। उस समय उसे भात दही, घृत, तथा शहद मिला कर प्रथम बार अन्न का भोजन देते है।

९. चूड़ा कर्म

चूड़ा का तात्पर्य है बाल गुच्छ, अर्थात् जन्म के पश्चात सर्व प्रथम मुण्डित सिर पर एक बाल गुच्छ रखा जाता है जिसे शाखा' कहते हैं। चूड़ाकर्म वह कृत्य है जिसमें जन्म के बाद पहली बार सिर पर शिखा को रखा जाता है। इस कृत्य को चुड़ाकर्म या चूड़ाकरण कहते हैं। यह पहले या तीसरे वर्ष में कर दिया जाता है या जैसी कुल परम्परा हो कर लेते है।

हिन्दुओं में यज्ञोपवीत एवं शिखा के बिना कोई भी धार्मिक कृत्य नहीं करना चाहिये। याज्ञवल्क्य ने जात कर्म से चौल तक के सभी संस्कारों को लड़कियों के लिये भी उचित माना है। कुल धर्म के अनुसार पूरा सिर मुण्डित होना चाहिये, या शिखा रखनी चाहिये। गर्भ वाले बाल अपवित्र माने जाते हैं अतः उनको एक बार तो अवश्य ही कटवा दिये जाने चाहिये।

१०. उपनयन

इसका अर्थ है "पास या सन्निकट ले जाना" यह पास ले जाने से तात्पर्य सान्निध्य से है आचार्य के। इसको जनेऊ लेना भी कहते हैं। कहीं कहीं पर यह संस्कार बाल्यकाल में ही ९ या ११ वर्ष का होने पर मनाया जाता है। लेकिन कहीं पर यदि पहले नहीं हुआ हो तो इसके बदले विवाह के समय ही दुर्गा जनेऊ हो जाता है। यह संस्कार सब सस्कारों में प्राचीनतम है। इसे विद्या सीखने वाले को गायत्री मंत्र सिखाकर किया जाता है। गायत्री मंत्र इस प्रकार है-ओउम् भूर्भुवः स्वःतत्स-वितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य धी महि धियो यो नः प्रचोदयात्।

प्रारम्भिक काल में उपनयन अपेक्षाकृत सरल था। भावी विद्यार्थी गुरु के पास जाकर ब्रह्मचारी के रूप में रहने की इच्छा प्रकट करता था। गुरु द्वारा स्वीकृति मिल जाने पर उपनयन सस्कार हो जाता था। धीरे धीरे इस संस्कार के हेतु भिन्न भिन्न कृत्य प्रचलित होते गये।

उपनयन संस्कार अधिकतर जन्म से लेकर आठवें वर्ष तक हो जाता है। यही नहीं क्रम से १६ .वें, २२ वें एव २४ वें वर्ष तक भी होता है। उपनयन मास के शुक्ल पक्ष में किसी शुभ नक्षत्र में किया जाता है। मंगलवार एव शनिवार उपनयन संस्कार के लिए निषिद्ध दिवस बतलाये गये हैं। तब ब्रह्मचारी

वाल, राजपूतों, में यह प्रचलित है। नासिका छेदन कराने पर नाक में सुनहरी बाली वा लोंग (कांटा) नामक गहना पहना जाता है। इसी तरह कान के लटकते हुए भाग में पतले तार से छेद कर उसे गोलाकार बांध दिया जाता है। आजकल यह कार्य सोनार करता है।

७. निष्क्रमण

इस संस्कार में जच्चा (जातकर्म के २१ दिन बाद व किन्हीं जातियों में ४० दिन बाद) सामान्य जीवन में आ जाती है। नाखून कटा कर, स्नान कर, नए वस्त्र पहनती है। पहले कुछ स्त्रियों के साथ इष्ट देव के मन्दिर जाती है, वहां से आकर घर में साधारण रीति से रहने और काम काज करने लगती है।

८. अन्न-प्राशन

बच्चा जब छः महिने का हो जाता है तो उसकी आंत भी अन्न पचाने योग्य हो जाती है। उस समय उसे भात दही, घृत, तथा शहद मिला कर प्रथम बार अन्न का भोजन देते है।

९. चूड़ा कर्म

चूड़ा का तात्पर्य है बाल गुच्छ, अर्थात् जन्म के पश्चात सर्व प्रथम मुण्डित सिर पर एक बाल गुच्छ रखा जाता है जिसे शाखा' कहते हैं। चूड़ाकर्म वह कृत्य है जिसमें जन्म के बाद पहली बार सिर पर शिखा को रखा जाता है। इस कृत्य को चुड़ाकर्म या चूड़ाकरण कहते हैं। यह पहले या तीसरे वर्ष में कर दिया जाता है या जैसी कुल परम्परा हो कर लेते है।

हिन्दुओं में यज्ञोपवीत एवं शिखा के बिना कोई भी धार्मिक कृत्य नहीं करना चाहिये। याज्ञवल्क्य ने [illegible] के सभी संस्कारों को लड़कियों के लिये भी [illegible] कुल धर्म के अनुसार पूरा सिर मुण्डित होना चाहिये, या शिखा रखनी चाहिये। गर्भ वाले बाल अपवित्र माने जाते हैं [illegible] उनको एक बार तो अवश्य ही कटवा दिये जाने चाहिये

१०. उपनयन

इसका अर्थ है "पास या सन्निकट ले जाना" यह पास [illegible] जाने से तात्पर्य सान्निध्य से है आचार्य के। इसको जनेऊ [illegible] भी कहते हैं। कहीं कहीं पर यह संस्कार बाल्यकाल [illegible] ९ या ११ वर्ष का होने पर मनाया जाता है। लेकिन यदि [illegible] यदि पहले नहीं हुआ हो तो इसके बदले विवाह के समय ही [illegible] जनेऊ हो जाता है। यह संस्कार सब संस्कारों में प्रधानतम है। इसे विद्या सीखने वाले को गायत्री मंत्र सिखाकर [illegible] जाता है। गायत्री मंत्र इस प्रकार है-ओउम् भूर्भुवः स्वः तत्स-वितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य धी महि धियो यो नः प्रचोदयात्।

प्रारम्भिक काल में उपनयन अपेक्षाकृत सरल था। [illegible] विद्यार्थी गुरु के पास जाकर ब्रह्मचारी के रूप में रहने की इच्छा प्रकट करता था। गुरु द्वारा स्वीकृति मिल जाने पर उपनयन संस्कार हो जाता था। धीरे धीरे इस संस्कार के हेतु भिन्न भिन्न कृत्य प्रचलित होते गये।

उपनयन संस्कार अधिकतर जन्म से लेकर आठवें वर्ष तक हो जाता है। यही नहीं क्रम से १६ .वें, २२ वें एवं २४ वें वर्ष तक भी होता है। उपनयन मास के शुक्ल पक्ष में किसी शुभ नक्षत्र में किया जाता है। मंगलवार एव शनिवार उपनयन संस्कार के लिए निषिद्ध दिवस बतलाये गये हैं। तब ब्रह्मचारी

दो वस्त्र धारण करता है-एक अधोभाग के लिये तथा द्वितीय ऊपरी भाग के लिये। वह हाथ में एक लकड़ी अथवा लाठी रखता है एव वक्षस्थल पर सूत की मेखला धारण करता है। इस तरह से धारण की गई मेखला यज्ञोपवीत कहलाती है।

११. वेदारम्भ

कोई भी विद्यार्थी यज्ञोपवीत धारण किये बिना वेदों का अध्ययन नहीं कर पाता था। प्राचीनकाल में इस मर्यादा का कड़ाई से पालन होता था परन्तु आधुनिक काल में यह व्यवस्था क्रम टूट सा गया है। उस समय गुरु का दर्जा उच्चतम होता था परन्तु अब वैसी मान्यता नहीं रही है।

१२. समावर्त्तन

वेदाध्ययन के उपरान्त गुरु गृह से वापसी के संस्कार को समावर्तन कहते हैं अर्थात् विद्यार्थी ने अध्ययन समाप्त कर लिया है। और अब वह किसी कन्या से विवाह कर सकता है। वैसे समावर्तन विवाह का कोई आवश्यक अङ्ग नहीं होता है जब कि कोई अपने पिता के घर रह कर ही अध्ययन करता हो। ऐसा व्यक्ति बिना समावर्त्तन के ही विवाह के बन्धन में प्रवेश कर सकता है।

अध्ययन के उपरान्त गुरु को निमन्त्रित किया जाता है तथा उसे दक्षिणा प्रदान कर आश्रम छोड़ कर व्रत पूर्ति का स्नान करने की अनुमति मांगी जाती है। यहां स्नान से तात्पर्य है विद्यार्थी जीवन की परिसमाप्ति। विवाह तथा स्नान करने की अवधि के बीच में इस व्यक्ति को स्नातक (नहाया हुआ अर्थात अध्ययन समाप्त कर चुका हुआ) कहा जाता है। जो छात्र आगे पढ़ना चाहता था उसे स्नातक बनने की आवश्यकता

नहीं होती थी। स्नातक विवाह के पश्चात गृहस्थ कहलाता था। आधुनिक काल में समावर्त्तन की क्रिया दिखावटी मात्र रह गई है।

१३. विवाह

इस संस्कार के आधुनिक रूप से सभी परिचित हैं परन्तु प्राचीन काल के आधारभूत सिद्धान्तों की चर्चा करना भी आवश्यक है।

इस संस्कार को सर्वोत्तम महत्ता प्रदान की गई है। विवाह का तात्पर्य किसी एक विशिष्ट ढंग से कन्या को पितृगृह से अपनी स्त्री बनाने के लिए अपने घर लाना हैं।

महाभारत के अनुसार प्राचीनकाल में स्त्रियां स्वेच्छिक मैथुन जीवन व्यतीत करती थी। कालान्तर में इसे अनाचार समझा जाकर व्यवस्थित नियमों के मुताबिक स्त्री पुरुषों का संग होने लगा।

विवाह का उद्देश्य प्राचीनकाल में गृहस्थ होकर देवताओं के लिए यज्ञ करना तथा सन्तानोत्पत्ति करना था।

वर-वधु के चुनाव के लिए भी व्यवस्था की गई है। अच्छे वर के लक्षण सामान्यतः निम्न माने गये हैं--

उत्तम कुल, सच्चरित्र, शुभ गुण, ज्ञान एवं अच्छा स्वास्थ्य निम्न व्यक्ति को अयोग्य माना गया है--

पागल, पापी, कुष्ठरोगी, नपुंसक, स्वगोत्री, अंधा, बहरा और मिर्गी का रोगी।

अच्छी कन्या के लक्षण सामान्यतः निम्न माने गये हैं--

बुद्धिमती, सुन्दर, सच्चरित्र, स्वस्थ एवं शुभ लक्षणों वाली। अशुभ लक्षण निम्न माने गये हैं :—

पिंगल बालों वाली, अतिरिक्त अंशों वाली, टूटे फूटे अङ्गों वाली, बातूनी, पीली आंखों वाली, अधर या चिबुक पर बालों वाली।

विवाह योग्य वर वधु के वय की व्यवस्था भी निर्धारित है। वर की उम्र कन्या से कम से कम सवाई जरूर होनी चाहिये।

विवाह कार्तिक पूर्णिमा के उपरान्त आषाढ़ की पूर्णिमा तक करना चाहिये परन्तु चैत्र के आधे भाग को छोड़कर किया जाना चाहिये। वैसे काल के बारे में विभिन्न मत हैं परन्तु कन्या की उचित अवस्था से अधिक समय पार करने के पश्चात किसी भी शुभ मुहर्त की राह देखना आवश्यक नहीं है। ज्येष्ठ मास में ज्येष्ठ पुत्र का विवाह ज्येष्ठ पुत्री से नहीं किया जाना चाहिये और ज्येष्ठ पुत्री का विवाह जन्म के मास, दिन या नक्षत्र में नहीं करना चाहिये। विवाह में सोमवार, बुधवार, बृहस्पतिवार एवं शुक्रवार उत्तम दिन होते हैं पर रात्रि में विवाह किसी भी दिन हो सकता है।

विवाह आठ प्रकार के माने जाते हैं यथा ब्राह्म, प्राजापत्य आर्ष, दैव, गांधर्व, आसुर, राक्षस एवं पैशाच।

जिस विवाह में आभूषणों एवं सुन्दर परिधानों से सुसज्जित कन्या को उसका पिता किसी पंडित एवं सुचरित्र व्यक्ति से सम्बन्ध कर दे देता है उसे ब्राह्मविवाह कहते हैं।

२ जब पिता अपनी कन्या किसी पुरोहित को दे देता है उसे दैव विवाह कहते हैं।

३. जब कन्या के बदले केवल नियम पालन के लिये एक

जोड़ा पशु का प्रतिदान लेकर किया जावे तो वह आर्ष विवाह कहलाता है।

४. जब पिता वर और कन्या को एक साथ धार्मिक कृत्य करने का उपदेश देते हुए तथा वर को सम्मानित करते हुए कन्यादान करता है तो वह प्राजापत्य विवाह कहलाता है।

५. जब वर कन्या के बदले भरसक धन कन्या के पिता को देता है तो वह आसुर विवाह कहलाता है।

६. वर और कन्या की सहमति से उत्पन्न प्रेम भावना के उद्रेक का प्रतिफल हो तथा पारस्परिक संभोग ही जिसका उद्देश्य हो उसको गांधर्व विवाह कहते हैं।

७. सम्बन्धियों को मार कर, घायलकर एवं सम्पत्ति को तोड़ फोड़ कर जब कन्या को ज़बरदस्ती उसके पितृगृह से ले जाया जावे तो ऐसे सम्बन्ध को राक्षस विवाह कहते हैं।

८–जब गुप चुप रूप से सोई हुई किसी अचेत कन्या से सम्भोग किया जाकर सम्बन्ध किया जाता है तो इसे महा पातकी कार्य समझा जाता है और इस सम्बन्ध को पैशाच विवाह कहते हैं।

पहले चार प्रकार के विवाहों में कन्या का अभिभावक वर को कन्यादान करता है जब कि अन्य चार में अभिभावक की सम्मति की आवश्यकता नहीं होती है। राक्षस और पैशाच विवाह जघन्य कार्यों में आते हैं।

जैसा विवाह होगा उसी प्रकार की सन्तान भी पैदा होगी। आधुनिक काल में ज्यादातर ब्राह्म एवं प्राजापत्य विवाह प्रचलित हैं। ब्राह्म एवं प्राजापत्य में कन्या दान होता है किन्तु आसुर में कुछ आर्थिक लेनदेन की व्यवस्था है। आधुनिक

नवयुवक अब प्रायः गांधर्व विवाह की ओर उन्मुख हो रहे हैं।

(१४) वानप्रस्थ

विवाह से सन्तानोत्पत्ति करके जब पुत्र के भी एक सन्तान हो जावे तो उस व्यक्ति के लिये जाति या देश की सेवा में लग जाने का प्रावधान है। वैसे प्राचीन मतानुसार वानप्रस्थ के सम्बन्ध में निम्न मान्यतायें हैं—

१-वन में जाना। अगर पत्नी युवती है तो उसे पुत्रों के आश्रय में रख जाना अन्यथा उसे अपने साथ ले जाना।

२-कन्दमूल आदि से शरीर को पालना

३-केवल भिक्षा मांगने के लिये ग्राम में प्रवेश किया जाना।

४-दिन में तीन बार स्नान करना।

५-सिर के बाल व नाखून बढ़ने देना, आदि

आजकल ये मान्यतायें पालन करना अत्यन्त कठिन है। घर पर रह कर ही धर्मसाधन किया जा सकता है अथवा कभी २ तीर्थ यात्रा भी कर सकते हैं।

(१५) संन्यास

समस्त काम इच्छायें और पदार्थों को छोड़ देना ही संन्यास है वानप्रस्थी के लिये बने नियमों में बहुत से इसमें भी लागू होते हैं। वानप्रस्थी के लिये पत्नी को साथ रखे जाने की व्यवस्था भी रहती है जब कि संन्यासी के लिये वह वर्जित है।

संन्यास- आश्रम ग्रहण करने से पहले उस व्यक्ति को प्रजापति का यज्ञ करना पड़ता है अपनी समस्त सम्पत्ति सन्तान, दरिद्रों और असहायों में वितरित कर देनी होती है। वह गांव के वाहर घर छोड़कर ही रहता है।

(१६) अन्त्येष्टी

मरने के पश्चात शरीर की अन्तिम क्रिया को अन्त्येष्टि या प्रेत संस्कार कहते हैं।

इस प्रकार वैदिक सोलह संस्कारों में हमें रीति रिवाजों के आधारों का पता चलता है। उक्त संस्कारों में अब प्रायः परिवर्तन हो चुका हे परन्तु हर रीति या रिवाज में संस्कार गत प्रणाली अवश्य रहती है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस प्रकार संस्कारों को अपनाने की व्यापक प्रणाली ने ही विभिन्न रीति रिवाजों को जन्म दिया है।

जन्म सम्बन्धी रीति रिवाज

गर्भाधान–

जब कोई नव विवाहिता पहली बार गर्भवती होती है तो इसे परिवार के लिए मंगलमय माना जाता है। ऐसे समय में उत्सवों का आयोजन होता है और स्त्रियां मंगल गीत गाती हैं। इन गीतों में गर्भवती के शरीर में होने वाले (९ महीनों के) परिवर्तनों, उसके प्रत्येक मास में होने वाली इच्छाओं का भी बड़ा रोचक वर्णन होता हैं।

पैलो मास उलरियों ए जच्चा वं को आलसिये मन जाय
दूजो मास उलरियो ए बैरों थूकतड़ मन जाय ए
अलबेली ए जच्चा, चांदी के प्याले केसर पावसां।

गर्भ के जव सात मास हो जाते हैं तो आठवें मास में वड़ा उत्सव मनाया जाता है। भाई वन्धुओं को निमन्त्रित कर गुड़ या अन्य मिठाई बांटी जाती हैं अथवा प्रीतभोज भी करते हैं। हर उत्सव के आरम्भ में देवी देवताओं की मनोती गीतों द्वारा मनाई जाती है।

जन्म–

जव वच्चा होता है तव उसको जन्म घुटी घर की किसी बड़ी बूढ़ी स्त्री के हाथ से दिलाते हैं। अगर शिशु लड़का है तो घर की वड़ी औरत कांसी की थाली वजाती है। ब्राह्मण से जन्म होने का ठीक समय वतला उसके शुभ अशुभ लक्षणों को

ज्ञात कर लिया जाता है। लड़की होने पर उत्सव कुछ फीके हो जाते हैं पर लड़का होने पर काफी उत्सव मनाने का रिवाज है। घर घर बधाइयाँ भेजी लाती हैं। लड्डू व गुड़ बांटा जाता है एवं गीत भी गाये जाते हैं। परिवार में शिशु का जन्म सुख और सौभाग्य का प्रतीक है अतः जन्मोत्सव को बड़े हर्ष और उल्लास के साथ मनाया जाता है। जन्मोत्सव के सम्बन्ध में गाये जाने वाले गीतों का कुछ नमूना नीचे दिया जा रहा है—

हे म्हारे उत्तर दिखन री ए जच्चा पीपमी
हे म्हारे पूर्व नमी नमी डाल रे
ये म्हारे घणीए सवाये जच्चा पीपली

इस सौभाग्यवती जच्चा के हर नित्यकर्म को गीतों में संजो लिया जाता है—

हे थारे गीगो ए जन्मियों आधी रात ए
हे थारे गुल बंज्यों परभात ॥

ये गीत बच्चा होने के पश्चात भी कई दिनों तक गाये जाते रहते हैं।

नामकरण—

बच्चे के जन्म के ११ वें या १०१ वें दिन या दूसरे वर्ष के शुरू में जिस दिन जन्म हुआ हो नाम रखते हैं। क्षत्रियों के नाम के साथ प्रायः सिह शब्द का प्रयोग होता है। नामकरण संस्कार ज्यादातर पंडित द्वारा करवाये जाने का ही रिवाज है। उस समय औरतें भी इकट्ठी होकर गीत गाती हैं। जिनमें जच्चा और बच्चे के प्रति शुभ कामनाएं की जाती हैं तथा देवी-देवताओं का स्मरण किया जाता है।

पनघट पूजन–

बच्चे के जन्म के कुछ दिनों पश्चात यह रस्म मनाई जाती है। घर, परिवार व मोहल्ले की औरतें इकट्ठी होकर देवी-देवताओं के गीतों का गायन करती हुई जच्चा को पनघट की पूजा कराने के लिए किसी कूप पर ले जाती हैं जहां पर जल पूजन किया जाता है। इस प्रथा को जलवा पूजन भी कहा जाता है।

अन्न प्राशन—

यह शिशु को सर्वप्रथम अन्न देने का एक विशेष संस्कार है। बच्चे के छः माह का होने के पश्चात कभी भी अच्छे मुहूर्त में उसे सर्वप्रथम अन्न का अंश खिलाया जाता है। इस अवसर को मांगलीक माना जाता है और जन्म सम्बन्धी अन्य रिवाजों की तरह बधाईयां बांटी जाती है। हवन एवं पूजा के साथ साथ गीत भी गाए जाते है।

झडूला–

जब बालक दो या तीन वर्ष का हो जाता है तब उसके बाल उतरा देते हैं अर्थात मुंडन करवाया जाता है। इन केशों को किसी कुल देव (पितर) के स्थान पर बच्चे को लेजाकर उतराया जाने का रिवाज है। किन्हीं किन्हीं जातियों में इस समय कर्ण छेदन का भी रिवाज है।

गोद लेना–

अन्य प्रदेशों की भांति यहां पर भी गोद लेने की प्रथा है। जब व्यक्ति के लड़का नहीं होता है तब वह अपने परिवार के

किसी लड़के को गोद लेता है जिसका मुख्य उद्देश्य वंश को चलाना होता है। ऐसे समय में भाई बन्धुओं को इकट्ठा कर उनके सामने उसे पगड़ी बंधा देना और पंचों को (बुजुर्गों) अमल चखा देने से गोद सही हो जाता है। ज्यादा दृढ़ सम्बन्ध बनाने हों यानि भविष्य में किसी विपद की आशंका न होने देने के लिए एक इकरारनामा भी लिखा जाता है जिस पर भाइयों की गवाही लिखाई जाती है। पति की मृत्यु के पश्चात विधवा स्त्री अपने पति के भाई बन्धुओं में से किसी को गोद ले सकती है। गोद आने वाले का हक पेट के बेटे (स्वजात) के बराबर होता है। अगर बाद में पुत्र हो भी जावे तो गोद लिये गये पुत्र का हक समाप्त नहीं होता है अपितु स्वजात संतान और दत्तक (गोद) संतान को बराबर का हक दिया जाता है।

वैवाहिक रस्में

अन्य प्रान्तों की तरह राजस्थान में भी विवाह के अवसर पर आडम्बरों की धूम-धाम अत्यधिक रहती है। विवाह के कार्यक्रम में सैकड़ों नेग चार अपनाये जाते हैं। कुछ धार्मिक होते हैं, कुछ पारिवारिक और कुछ सामाजिक। यहां पर वाल विवाह भी प्रचलित है। ग्रामीण क्षेत्रों में तो व्याह वाल्यकाल में ही हो जाता है। हालांकि इसे एक कुप्रथा मानते हुए समाप्त किया जा रहा है फिर भी इसका अस्तित्व पूर्ण रूप से मिटा नहीं है। यहां तक देखा गया है कि वच्चों के जन्म के समय ही उनकी शादियां तय हो जाती हैं और वे जब वाल्यवस्था में ही होते हैं तभी उन्हें विवाह के वन्धन में वांध दिया जाता है। इसका मुख्य कारण है मां वाप का वच्चों के जन्म के पश्चात् उनकी शादी करना ही अपना मुख्य कर्त्तव्य समझना। जिसे वे हर सम्भव तरीके से शीघ्रता से पूर्ण करने में अपना हित समझते हैं। अनमेल विवाह भी यहां काफी होते हैं। राजाओं और जागीरदारों में वहु-विवाह भी होते आये हैं। जिसका असर जन-सामान्य पर भी पड़ा। सामान्यतः राजपूत, भील, मीणा आदि जातियों में वहु-विवाह प्रचलित है। भारत के नये कानून के अनुसार यह प्रथा अव वन्द हो गई है। वहु-विवाह के साथ साथ यहां के राजा महाराजा व उच्च घराने के व्यक्ति अपने यहां पासवाने तथा रखेलियां रखते थे और हर समय विलासिता में डूवे रहते थे। इन पासवानों

तथा रखेलियों के गर्भ से उत्पन्न संतान से "दरोगा" जाति बनी है। राजपूतों की संतानों से 'रावरण राजपूत' जाति कहलाई। यों ऐसे लोग गोला, चाकर आदि भी कहलाते हैं। इन लोगों को राजाओं, जागीरदारों आदि के टुकड़ों पर निर्वाह करना पड़ता था तथा गुलामी की सी हालत में रहना पड़ता था। इनकी कन्यायें डावड़ियां कहलाती थीं, जो राजपूत कन्याओं के साथ दहेज में दे दी जाती थी और विलासिता का साधन बना दी जाती थी" (कांग्रेस स्वागत् समिति, जयपुर द्वारा प्रकाशित राजस्थान दिग्दर्शन पृ० ४८)। अब ये प्रथा प्रायः समाप्त हो चुकी है।

यहां विधवा विवाह की प्रथा नहीं है। केवल कुछ जातियों नातरायत राजपूत, काछेला, चारण, जाट, माली, गूजर, मीणा, भील, रावणा-राजपूत (दरोगा), मिरासिया आदि में विधवा विवाह होते हैं। इसके साथ साथ कुछ जातियों में (करेवा-पूर्नविवाह) (नाता) का रिवाज है। इस प्रथा के अनुसार एक पति के रहते पत्नि अपने पहले पति को छोड़ अन्य व्यक्ति से नाता कर सकती है या उसके मरने पर दूसरा घर बसा सकती है। धनाभाव के कारण राजपूतों में नाता होते हैं। ऐसे "नातरायत" राजपूत ज्यादातर भूमि हीन हैं। यों वे भी शुद्ध राजपूत माने जाते हैं। इन राजपूतों की पुत्रियों का विवाह बड़े बड़े जागीरदारों से भी हो जाता है। कहा भी है-"नातरायत की तीजो पीढ़ी गढ़ चढ़े।"

शादी के अवसर पर दहेज देने की प्रथा का यहां पर बहुत चलन है। कई कई जातियों में तो लड़की की शादी में बहुत सा धन देना अनिवार्य हो जाता है। अन्यथा लड़की के अविवाहित रहने का अंदेशा रहता है। पिछली शताब्दी तक तो कई

लोग अपनी कन्याओं को इसी कारण मार डालते थे। कहा भी गया है—

पेंडो भलो न कोस को, बेटी भलो न एक।

देणों भलो न बाप को, साहिब राखे टेक ॥

सगाई—

शहर के लोग अपनी संतान को बड़ी उम्र तक अविवाहित रखते हैं। लेकिन ग्रामीण कम आयु में ही शादी कर डालते हैं। "सगाई" अर्थात् मंगनी होने के कुछ समय बाद ही विवाह कर दिया जाता है। लड़का व लड़की के माता पिता आपस में मिलकर या किसी भाट, पुरोहित, चारण अथवा और किसी को बीच में रखकर मंगनी तय करते हैं। सामान्यतः एक साख (कुल) में आपसी विवाह सम्बन्ध नहीं होता है। यों इस समय लड़का, लड़की की आयु, कुल, स्थान, शरीर, बल, गुण आदि भी देखे जाते हैं। यह प्रथा पढ़े लिखे अथवा समझदार लोगों तक ही सीमित है। जब सगाई तय हो जाती है तो कन्या का पिता अपनी सामर्थ्य अनुसार रंग विरंगा साफा, कपड़े, गहना, मेवा, मिठाई फल फूल, पान तथा एक नारियल भेजता है। यदि गुंजाइश न हो तो सिर्फ सवा रुपया और एक नारियल में ही यह रीति हो जाती है। कई परिवारों में यह रस्म टीका करते वक्त की जाती है।

टीका—

टीके के लिये वर का पिता शुभ घड़ी और शुभ मूहर्त में अपने सजातियों को आमंत्रित करता है। कन्यापक्ष के लोग

वर के घर जाकर सब के सामने चौकी पर बैठे वर के तिलक करते हैं। जिसमें अपने साथ लाया हुआ सामान, नगदी, मिठाई, वस्त्र आदि देते हैं।

सकाई का अमल--

किन्ही २ घरों में टीके के वक्त वर की ओर से अफीम गला कर लोगों को मनवार की जाती है और मेवा, गुड़ तथा बताशे बांटे जाते हैं। इस प्रथा को एक साक्षी के रूप में माना जाता है अर्थात् मंगनी के पीछे यदि कोई झगड़ा पड़ जावे तो उन अफीम चखने वालों की गवाही दी जाती है।

चोकणी कोथली (पहरावणी)-

इस मौके पर वर के घर से वधु के लिये सामर्थ्य अनुसार गहना, कपडा, चूड़ियां, मेवा, मिठाई, फल फूल का थाल तथा नारियल आदि भेजे जाते हैं जिसको चिकणी कोथली या पहरावणी कहते हैं।

लग्न पत्रिका-

विवाह के दोनों पक्षों द्वारा तय की गई तिथि से पूर्व कन्या पक्ष वाले एक रंग विरंगे कागज पर पंडित के हाथ से लिखी हुआ विवाह मूहर्त मय एक नारियल के वर गृह को भेजते है। इसे लग्न पत्र कहते हैं इसी लग्न पत्र में विवाह की तिथि लिखि होती है। वर पक्ष वाले उस दिन बरात सजाकर वधू के घर पहुँच जाते हैं।

कुंकुम पत्रिका–

विवाह के लगभग एक सप्ताह या इससे भी अधिक दिन पहले वर और कन्या के माता पिता अपने अपने सगे सम्बन्धियों व मित्रों को बुलाने के लिये केसर और कुंकुम के छोटे से सुसज्जित निमंत्रण-पत्र भेजते हैं। इसको कुंकुम पत्रिका कहते हैं।

बाण बैठाना––

तीन, पांच, नौ अथवा ग्यारह दिन पहले और लग्न पत्र पहुँचने के पश्चात दोनों पक्ष (वर, वधु) अपने अपने घरों में गणेश पूजन करके भावी वर व वधु को चौकी पर बैठाकर गेहूँ का आटा तथा घी और हल्दी घोलकर इसको वदन में मलते हैं जिसको पीठी करना कहते हैं। सुहागिन स्त्रियां मंगला चरण के गीत गाती हैं। इस क्रिया को "बाण बैठाना" भी कहते हैं। बाण बैठाने के लिये कोई निश्चित समय नहीं है। इस दिन से वर और वधु के बहुत ही लाड़ प्यार और शृंगार होते हैं। विवाह तिथि तक प्रति दिन पीठी लगाई जाती है तथा नहा धोकर फूलों के हार पहनाये जाते हैं। इस अवसर के उपरान्त अपनी अपनी जाति वालों को गुड़ व मिठाई भिजवाते हैं।

बाण बैठने के पश्चात विवाह तिथि तक घर में आने वाले मेहमानों का स्त्रियों द्वारा गीत गाकर स्वागत किया जाता है। मेहमान वर या वधु को अपनी हैसियत के अनुसार रुपये देते हैं। इसको 'बाण देना" कहते हैं। जिन भाई बन्धु और इष्ट मित्रों की हैसियत होती है वे वर या वधु को सपरिवार अपने घर निमंत्रित कर उत्तमोत्तम भोजन भी कराते है और

वापस बड़े ही ठाट बाट से उनके घर पहुँचा देते हैं। इसको बनौरा भी कहते हैं।

विनायक पूजन--

विवाह के एक अथवा दो दिन पहले वर के घर गणेश पूजा किये जाने के पश्चात सम्बन्धियों और पड़ोसियों को भोजन पर आमंत्रित किया जाता है। इस भोजन को विनायक भोजन भी कहते हैं।

बरी पड़ला--

वर के घर से वधु के लिये कपड़ा तैयार कर ले जाने को बरी, मेवा-मिठाई तथा अन्य चीजों के ले जाने को पड़ला कहते हैं। यह बरी व पड़ला विवाह तिथि को बरात के साथ ले जाया जाता है। इस बरी में ले जाये जाने वाले वस्त्रों को विवाह के समय दुलहिन पहनती है।

कांकन डोरडा-

इसी रात को पूजन के बाद वर के दाहिने हाथ और पांव में कांकन डोरा बांधते हैं। यह धागा मौली (लाल पीले रंग का कच्चा सूत) को बट कर बनाया जाता है। मेंडल के एक सूखे फल में छेद कर वह मौली में पिरोया जाकर एक मोरफली और लाख व लोहे के छल्ले भी मौली में बांध दिये जाते हैं। इस समय एक कांकण डोरा वधु के लिये भी बना कर रख लिया जाता है जो फेरे के दिन पड़ला बरी के साथ भेजते हैं और वधु उस दिन ईश्वरोपासना कर बांध लेती है।

बिन्दोली–

विवाह के दिन ही या उसके पहले दिन बींद और बींदनी की बिंदोली निकाली जाती है अर्थात् उन्हें गाजे बाजे के साथ गांव या नगर में घोड़ी पर बैठाकर या किसी वाहन में बैठाकर घुमाया जाता हैं। स्त्रियां इस दिन नाचती भी हैं। बींद व बींदनीं को, थाल में दीपक सजाकर, पूजा भी की जाती है।

मोड़ बांधना–

विवाह के दिन सदा की तरह सुहागन स्त्रियां गीत गाती है। वर को नहला धुला कर वस्त्रादि से सुसज्जित कर कुल-देव के सामने पाटे पर बैठा पूजन कराते हैं। वर के सिर पर शोभा के वास्ते सुन्दर पगड़ी के ऊपर मुकुट लगाया जाता है साथ में फूलों का सेहरा भी। मुकुट लगाया जाना अनिवार्य है क्योंकि मुकुट के बिना शादी नहीं हो सकती है। यदि किसी कारण मुकुट नहीं मिल सकता तो नागर बेल का पान या पीपल वृक्ष का पत्ता ही मुकुट के स्थान पर बांध दिया जाता है। वर कमर में तलवार या कटार बांध कुल देव को प्रणाम करता है एवं चौकी से उतरते वक्त मिट्टी के दो दियों को एड़ी से तोड़ता है जो एक प्रकार से बल परीक्षा का प्रतीक है। इसी समय वर को उसकी मां या घर की बड़ी बूढ़ी अपना दूध पिलाती है या ऐसी ही अन्य रस्म अदा करती है। इस रस्म से वह उसको यह बात याद दिलाती है कि तूने मेरा दूध पिया है अब तू पराये घर जाकर और वहां से वधु लाकर मुझे भूल मत जाना। दुल्हा तब घर के बाहर आता है जहां बराती इकट्ठे हुये रहते हैं।

बरात–

बरात का जुलूस सामर्थ्य अनुसार बहुत ही सज धज कर निकलता है। दुल्हा सुन्दर घोड़ी पर सवार होता है। गांव दूर हो तो बरात दो एक दिन पहले या उसी दिन वधु-गृह रेल, बस, मोटर, रथ आदि के द्वारा पहुंच जाती है। इस रस्म को जान चढ़ना भी कहते हैं। यह रिवाज किसी जमाने में जरूरत के कारण बनाया गया था। जब खुश्की के लम्बे सफर करके वर को दूर देश जाना पड़ता था और वापसी के वक्त दहेज की बहुत सी मात्रा लेकर आना पड़ता था। उस वक्त रक्षार्थ भाई बन्धु और अन्य हितैषी साथ में जाते थे. बरात में हाथी, घोड़े रथ, बैण्ड, प्रकाश के लिए गैस बत्तियां आदि साथ जाती हैं। पहले तो धनी लोग गायिकायें व गवैयों को भी साथ में ले जाते थे लेकिन अब यह चलन कम हो गया है। नगरों में अतिशबाजी भी की जाती है।

सामेला–

जब बरात दुल्हन के गांव या घर के पास पहुंचती है तो वर के नाई या ब्राह्मण आगे पहुंच कर कन्या पक्ष वालों को बरात आने को बधाई देता है। सूचितकर्ता को पुरस्कार स्वरूप कन्या पक्ष की हैसियत के अनुसार एक नारियल और दक्षिणा देते हैं। पश्चात कन्या पक्ष का पिता या उसका बन्धु, अन्य बन्धुओं सहित वर पक्ष की अगवानी हेतु आता है। इसको "सामेला", या 'ढुकाव' कहते हैं। वे बरात को उसके विश्राम स्थल पर ले जाते हैं। वहां से वरी पड़ला में से आवश्यक सामान, जो बारात साथ में लाती है, वधु के घर पहुँचा देते हैं।

यदि भोज में लपसी बनाई गई हो तो वह कंवारी लापसी कहलाती है।

ढुकाव—

सायं विवाह मुहुर्त से कुछ पहले अथवा सूर्यास्त होने तक बर राजा का जलूस निकाला जाता है जो विश्राम स्थल से बरातियों व अन्य परिचितों के संग जुलूस के रूप में कन्या वालों के घर पहुंचता है। इस जुलूस को ढुकाव कहते है। इसमें बर घोड़ी पर सवारी करता है।

तोरण बंदना—

ढुकाव के कन्यागृह तक पहुंचने पर बर दरवाजे पर बंधे तोरण को घोड़ी पर चढ़ा हुवा ही तलवार या छड़ी से ७ बार छूता है। सारांश यह है कि बर के स्वागत के लिये तोरण और नाना प्रकार के चित्रों से सजाये स्वागत द्वार को बर बन्दना करता है। तोरण मांगलिक चिन्ह होता है। यह उस रीति का भी सूचक है कि जब पूराने जमाने में स्वयंवर विवाह की रीति प्रचलित थी और स्पर्धा रखने वाले कन्या के लिये कई उम्मीदवार होते थे और उनमें से जो स्पर्धा में उत्तीर्ण होता था वह इस विजय सूचक चिन्ह को तलवार से छूकर कन्या के गृह में प्रविष्ट करता था। यह तोरण दरवाजे को शोभा के लिये बढ़ई (खाती) उसी दिन द्वार पर बांधता है। खाती को बर पक्ष से कम से कम सवा रुपया इनाम का दिया जाता है। तोरण की शकल मुकुट जैसी होती जिसे लकड़ी का बनाया जाकर रंग बिरंगा रंग दिया जाता है। यह तोरण विवाह की अनिवार्य सामग्री में से होता है। यदि किसी गरीब के द्वार न

सामेला में वधु पक्ष वाले वर पक्ष के निकट सम्बन्धियों को रुपये व नारियल भी देते हैं।

वधु के तेल चढ़ाना—

यह तेल उबटने वर के तो विवाह के दो तीन दिन पहले ही हो जाता है पर प्रत्याशी वधु के तेल उबटन लगाने का रिवाज बारात के आने पर होता है क्योंकि तेल चढ़ी लड़की कुंवारी नहीं रह सकती है। तेल चढ़ाने की रस्म से आधा विवाह मान लिया जाता है। तेल चढ़ाये जाने के पश्चात यदि मुहूर्त पर वर न पहुँच सके तो ऐसे वक्त में बड़ी कठिनाई पैदा हो जाती है और लाचार होकर उसका विवाह स्वजातीय अन्य मनुष्य से करना पड़ता है। राजस्थान में कहावत हैं—

"तिरिया तेल हमीर हठ चढ़ै न दूजी बार"

इसलिये वर को देखे जाने के पश्चात ही तैल चढ़ाया जाता है। वरी पड़ला में आए सामान में से वस्त्रों को पहना कर कन्या से कुल देवता की पूजा कराते हैं।

कंवारी जान—

विवाह के पहले (प्रायः एक दिन पहले) वधु के यहां जाने वाली बरात को भोज दिया जाता है जो कंवारी जान जीमना कहा जाता है।

कंवारी भात—

कन्या के पिता द्वारा कन्या के पाणिग्रहण के पूर्व बरातियों को दिया जाने वाला भोजन कंवारी भात कहलाता है।

हो तो लकड़ियां खड़ी करके ही दरवाजा बना देते हैं और उन
पर एक आड़ी लकड़ी रख कर तोरण बांध दिया जाता है।
तात्पर्य यह है कि यहा परम्परा के मुताबिक विवाह के लिये
तोरण द्वार का होना आवश्यक है।

चारण व भाट का नेग–

साधारण जातियों में विवाह के वक्त तोरण बांधने के
समय जातीय भाट और चारण ।विशेषकर क्षत्रिय जाति
के विवाह पर को अलग अलग नेग दिया जाता है। ये लोग
उच्च स्वर में बुजुर्गों के कारनामें व वंशावलि कविता में कहते
हैं और बाद में यह दोहरा बार बार पढ़ते हैं-

कंकण बंधन रण चढ़न,
पुत्र वधाई चाव।
तीन दहाड़ा त्यागरा,
कांई रंक कांई राव।

अर्थात् जिस दिन विवाह के वास्ते कंगन बांधा जावे, जिस
दिन लड़ाई पर जाने को घोड़े पर चढ़े और जिस दिन लड़का
होने का उत्सव करे ये तीन दिन, अमीर तथा गरीब, सबके
वास्ते बधाई बांटने के दिन हैं।

स्त्रियों द्वारा गीत गाना–

इधर वर दरवाजे पर तोरण वंदन करता है उधर
दूसरी ओर घर के बाहर पास पड़ोस की सभी औरतें इकट्ठी
होकर वर का गीतों से अभिवादन करती हैं। इस अवसर पर
गाये वर वाला गीत काफी मनोरंजक है :-

तोरण आयो राईवर,
थर हर कांप्यो राज।
पूछों सिरदार बनो न,
कामण कुण करया छ राज।

अर्थात औरतें कहती हैं कि दरवाजे पर बर श्रेष्ठ आ तो गया है पर वह थर थर कांप रहा है। इनसे पूछो कि यह जादू इस पर किसने कर दिया।

सास द्वारा दही देना—

वर जब तोरण वंदना कर नीचे उतरता है तो उसे दरवाजे के सामने चौकी पर खड़ा किया जाता है। उसकी सास उसके ललाट में दही और सरसों का टीका लगाती है। इसको 'दही देना कहते हैं। जब कोई बेटा कपूत निकल जाता है तो उसे उसकी मां कहती है कि तूने मेरा दूध लजा दिया। उसी प्रकार कपूत दामाद को भी सास 'दही लजाने' का उलहाना देती है। सास टीका लगाते वक्त दामाद से कहती भी है कि देखना कहीं मेरा दही लजा मत देना।

बर पर वार—

इधर सास का दही देना होता है और उधर से वर की होने वाली वधु किसी की ओट से वर पर वार करती है। वार करने के लिये एक माला का प्रयोग किया जाता है जिसमें मिठाई एवं नमकीन पिरोये होते हैं। कहते हैं पुराने काल में इस प्रथा का एक बहुत ही विकृत एवं भयानक रूप रहा है। वर पर वार करते वक्त उस काल में अस्त्रों का प्रयोग किया जाता था। ऐसे वार से वर को अपना बचाव करने के लिये

सावधान रहना पड़ता था। अब तो यह सिर्फ उस रिवाज का प्रतीक मात्र ही रह गया है।

आरती—

घर की सोहागन स्त्रियां उस चौकी पर खड़े वर की आरती करती हैं। दीपक की आरती बड़ी आकर्षक और उसकी रोशनी की छटा निराली होती है। उसे 'झलामल' या 'चमक दीवा' की आरती भी कहते हैं।

हवन और फेरे (सप्तपदी)—

विवाह प्रसंग में यह परम्परा सबसे महत्व की और अति प्राचीन है। यही वह महत्वपूर्ण व्यवस्था है जिसमें दो अनजान सदा सदा के लिये एक हो जाते हैं। सामान्यतः इस रस्म के पहले दो अनजान चेहरों ने कभी बातचीत करना तो दूर एक दूसरे का मुख भी न देखा हो, लेकिन हवन और फेरों के बाद पति पत्नि कहलाने लगते हैं, ब्राह्मण द्वारा हवन कराया जाता है। धर्मशास्त्रानुसार वर अपनी वधु का हाथ अपने हाथ में लेकर अग्नि के सामने प्रतिज्ञायें करता है। एक महत्वपूर्ण बात यह है कि ऋग्वेदकाल से अब तक बहुत सी प्रथायें ज्यों की त्यों चली आ रही है।

संस्कृत सूत्रों की ऋचाओं का उच्चारण करते हुये वर वधु का अंगूठा पकड़ कर कहता है "मैं तुम्हारा हाथ सुख के लिये पकड़ रहा हूँ।" वर और वधु अग्नि की तीन प्रदक्षिणा एक साथ करते हैं। इस क्रम में कन्या वर के आगे रहती है। ऐसी प्रदक्षिणा के वक्त वर कहता है— मैं अहम् पुरुष) हूँ, तुम सा

(स्त्री) हो। और मैं अहम् (पुरुष) हूं। मैं स्वर्ग हूं तुम पृथ्वी हो, मैं साम हूं तुम ऋक् हो। हम दोनों विवाह करलें। हम सन्तान उत्पन्न करें। एक दूसरे को प्यारे, चमकीले, एक दूसरे की ओर झुके हुए हम लोग सौ वर्ष तक जीएं।" जब वह अग्नि की प्रदक्षिणा करते हैं, उस वक्त वर कन्या से प्रस्तर पर पैर रखवाकर कहता है--"इस पर चलो, इसी के समान अचल होवो, शत्रुओं पर विजय प्राप्त करो, उन्हें कुचल दो।" पहले कन्या को अंजलि में घृत छोड़ कर उसका भाई या जो कोई भाई के स्थान पर हो, दो बार भुना हुआ अन्न छोड़ता है और अग्निमे घी की आहूति दी जाती है। वर और कन्या के सिरों को साथ मिलाकर हवन कराने वाला ब्राह्मण कलस से जल उन पर छिड़कता है। जैसा कि आरम्भ में वताया गया है। पहले तीन फेरों में वधु आगे रहती है एव वर पीछे, लेकिन चौथे फेरे में वर आगे आ जाता है और वधु पीछे। कुल ७ फेरे दिये जाते हैं और इनके दौरान ब्राह्मण वेद मंत्रों का उच्चारण करते रहते हैं। इन्हें सप्तपदी के फेरे भी कहते हैं। पहले तीन फेरों तक कन्या पितृगृह की रहती है जबकि चौथे फेरे में कन्या श्वसुराल की हो जाती है जैसा कि गीत की निम्न कड़ी से स्पष्ट है :—

पहले फेरे वावा की वेटी,
दूजे फेरे भुआ री भतीजी।
तीजे फेरे मामा री भाणजी,
चौथे फेरे धी हुई पराई।

अर्थात् लड़की पराई हो गई है। ऐसी परिक्रमाओं के पश्चात् ध्रुव तारे का दर्शन करता है और वे दोनों ध्रुव तारे देखते हुए उपस्थित लोगों के सामने प्रण करते हैं। जिस

प्रकार यह ध्रुव स्थिर है उसी प्रकार हम एक दूसरे के प्रिय आचरण में दृढ़ रहेंगे।

कन्या दान–

इसके दो अर्थ होते हैं–

१–विवाह में बर को कन्या देने की रस्म।

२–इस अवसर पर कन्या को दिया जाने वाला दान।

फेरे समाप्त होने के वाद ही वधु के मां बाप वेदमंत्रों से कन्यादान का संकल्प करतें हैं। उस वक्त रिश्तेदार भी जो कुछ कन्या को देना चाहें देदेतें हैं और इसके साथ ही २–३ घंटे में विवाह संस्कार का मूल रूप समाप्त हो जाता है।

कन्यावल

कन्या के विवाह के दिन घर के बड़े बुढ़ों द्वारा उपवास किया जाता है। रात्रि को पाणिग्रहण संस्कार के वाद ही वे भोजन करते हैं।

रंगबरी व पहरावणी–

विवाह के दूसरे दिन बर पक्ष वाले पंडित के साथ वधुगृह जाते हैं एवं अपने साथ वे वस्तुयें ले जाते हैं जो बर वधु को आशीर्वाद स्वरूप देना चाहें। वधुगृह पर भी एक पंडित होता है। वर पक्ष और वधु पक्ष के पंडितों में शास्त्रार्थ किया जाता है। तत्पश्चात पहरावणी की रस्म अदा की जाती है। इस रस्म में प्रदर्शनार्थ वे सभी वस्तुए और धन रखा जाता है जो वर पक्ष एवं वधु पक्ष द्वारा वर वधु को आशीर्वाद

के रूप में दिया जाता है। इसी रस्म में दहेज का वह सामान और धन भी होता है ।

कलसाजान-

पुष्करणा ब्राह्मणों में पहले विवाह में कन्या पक्ष की ओर से एक भोजन दिया जाता था जिसमें कलसे के जल द्वारा बरातियों को स्नान कराया जाने के पश्चात भोजन कराया जाता था। अब यह प्रथा उठ सी गई है।

सज्जनगोष्ठी

वैवाहिक रस्मों के अदा होने के पश्चात वधु पक्ष की ओर से सज्जन गोष्ठी का आयोजन किया जाता है जिसमें दोनों पक्ष के सगे सम्वन्धियों को अच्छे पकवान्न खिलाये जाकर आदर किया जाता है। इसी गोष्ठी में औरतें अपना हिस्सा गीत गाकर अदा करती है। इस अवसर के गीत मनोरंजक होते हैं- मैं·······तो········(नाम बोला जाता है) की लूंठी न लेकर भाग जाऊंगी-

वोल रे सगे का मुर्गा·······कुकड़ूं कूं-

वधु का जानिवास (बारात विश्राम स्थल) तक जाना-

यह रस्म राजस्थान में अपना महत्व रखती है। लड़की अपने घर से विदा होते वक्त बहुत दुःख अनुभव करती है। अब तक उसकी समझ में आ जाती है कि जिस घर को उसने अपना आज तक समझा था वह अब पराया हो चुका है। नया घर न मालुम कैसा होगा इसी कल्पना से वह रो पड़ती है।

उसके रोनें में वह वातावरण भी सहायक हो जाता है जिस समय परिवार की औरतें लड़की को विदा करने के लिये करुण स्वर में विदाई गीत गाती हैं। उस समय का मार्मिक प्रसंग देखने वाले भी विवाहोत्सव की समस्त खुशियों को एक बारगी भुला देते हैं। घर की औरतों द्वारा मार्मिक स्वरों में गीत भी गाया जाता है जो हृदय तंत्री में झंकार पैदा कर देता है। विदाई गीत की कुछ पक्तियां इस प्रकार से हैं—

ऊंची तो खींव ढोला बीजली जी,
नीची तो निवाण जी ढोला,
ओजी ओ.......गोरी रा लसकरिया,
ओल्युंड़ी लगाय सिध चाल्याजी ढोला,
म्हारी तो ओल्यू लसकर म्हें....करांजी,
म्हारी तो ओल्यू म्हारी माय कर।

कुल देवता की पूजा—

कुल देवता वह देवता होता है जिसकी पूजा किसी कुल में परम्परा से होती आई हो। वर वधु के विवाह वन्धन में बंध कर आने के उपरान्त सर्व प्रथम पति पक्ष के कुल देवता की पूजा की जाती है। इससे पहले द्वार रुकाई की रस्म भी मनाई जाती है। अर्थात् बारात जब वधु को लेकर आती है वर वधु सीधे घर में प्रवेश नहीं पाते। पहले दोनों की आरती उतारी जाती है। तत्पश्चात वर अपनी बहिन को दक्षिणा के रूप में कुछ देकर ही घर में प्रवेश करता है।

कांकण छोड़ना—

विवाह की वह रस्म, जब वर वधु का एवं वधू बर के हाथ व पैर में बधा सूत का धागा खोलती है। कुल देवता की पूजा

के बाद ही पति पत्नि के मोड़ और कांकण डोरे खोल दिये जाते हैं। पश्चात वधु अपनी सास-जेठानी और अन्य बड़ी बूढ़ी औरतों के पांव छूती है तथा उनसे आशीर्वाद लेती है। वधु का पति गृह में कितने दिन पहली बार रहना हो यह निश्चित नहीं है, परन्तु प्रथम बार २ दिन से १० दिन तक वह रहती है। तत्पश्चात उसका छोटा भाई, बहन या कोई रिश्तेदार जो उसके साथ जाते हैं, वे उसे लेकर लौट आते हैं। साथ जाने वाले को औलन्दा या औलन्दी कहते हैं। उसको वर पक्ष वाले वस्त्र आदि देकर रवाना करते हैं।

गोना—

वधु अगर सयानी होती है तो यह रस्म विवाह के वक्त ही करदी जाती है अन्यथा उसके सयानी होने पर किया जाता है। इस अवसर पर सयानी कन्या को उसका पति पितृगृह से ले जाता है। ऐसे अवसर पर औरतें गीत गाती हैं और दामाद के साथ आए मेहमानों को मिष्ठान्न पकवानों से मनुहार की जाती है।

इसी रस्म के साथ ही पति पत्नि का सामान्य सामाजिक जीवनक्रम चालू हो जाता है।

—

उसके रोनें में वह वातावरण भी सहायक हो जाता है जिस समय परिवार की औरतें लड़की को विदा करने के लिये करुण स्वर में बिदाई गीत गाती हैं। उस समय का मार्मिक प्रसंग देखने वाले भी विवाहोत्सव की समस्त खुशियों को एक बारगी भुला देते हैं। घर की औरतों द्वारा मार्मिक स्वरों में गीत भी गाया जाता है जो हृदय तंत्री में झंकार पैदा कर देता है। बिदाई गीत की कुछ पक्तियां इस प्रकार से हैं—

ऊंची तो खींव ढोला बीजली जी,
नीची तो निवाण जी ढोला,
ओजी ओ......गोरी रा लसकरिया,
ओल्युंड़ी लगाय सिध चाल्याजी ढोला,
म्हारी तो ओल्यू लसकर म्हें....करांजी,
म्हारी तो ओल्यू म्हारी माय कर।

कुल देवता की पूजा—

कुल देवता वह देवता होता है जिसकी पूजा किसी कुल में परम्परा से होती आई हो। वर वधु के विवाह वन्धन में बंध कर आने के उपरान्त सर्व प्रथम पति पक्ष के कुल देवता की पूजा की जाती है। इससे पहले द्वार रुकाई की रस्म भी मनाई जाती है। अर्थात् वारात जब वधु को लेकर आती है वर वधु सीधे घर में प्रवेश नहीं पाते। पहले दोनों की आरती उतारी जाती है। तत्पश्चात वर अपनी वहिन को दक्षिणा के रूप में कुछ देकर ही घर में प्रवेश करता है।

कांकण छोड़ना—

विवाह की वह रस्म, जब वर वधु का एवं वधू वर के हाथ व पैर में बधा सूत का धागा खोलती है। कुल देवता की पूजा

के बाद ही पति पत्नि के मोड़ और कांकण डोरे खोल दिये जाते हैं। पश्चात वधु अपनी सास-जेठानी और अन्य बड़ी बूढ़ी औरतों के पांव छूती है तथा उनसे आशीर्वाद लेती है। वधु का पति गृह में कितने दिन पहली बार रहना हो यह निश्चित नहीं है, परन्तु प्रथम बार २ दिन से १० दिन तक वह रहती है। तत्पश्चात उसका छोटा भाई, बहन या कोई रिश्तेदार जो उसके साथ जाते हैं, वे उसे लेकर लौट आते हैं। साथ जाने वाले को औलन्दा या औलन्दी कहते हैं। उसको वर पक्ष वाले वस्त्र आदि देकर रवाना करते हैं।

गोना—

वधु अगर सयानी होती है तो यह रस्म विवाह के वक्त ही करदी जाती है अन्यथा उसके सयानी होने पर किया जाता है। इस अवसर पर सयानी कन्या को उसका पति पितृगृह से ले जाता है। ऐसे अवसर पर औरतें गीत गाती हैं और दामाद के साथ आए मेहमानों को मिष्ठान्न पकवानों से मनुहार की जाती है।

इसी रस्म के साथ ही पति पत्नि का सामान्य सामाजिक जीवनक्रम चालू हो जाता है।

———

गमी की रस्में

जब कोई मरता है तब उसे चौका देकर जमीन पर लिटा देते हैं। यदि उसको "बैकुण्ठी" में बैठाकर स्मशान भूमि में ले जाना होता है तब तो मृत पुरुष को मरते मरते बैठा देते हैं और जब तक उसका शरीर गर्म रहता है तब तक पकड़े रहते हैं। बाद में दिवार से लगाकर बैठा देते हैं।

बैकुण्ठी—

एक छतरीदार सिंहासन जैसा लकड़ी का ढांचा बैकुण्ठी कहलाता है। इस बैकुण्ठी में मृत पुरुष को पद्मासन से बैठा कर गाजे बाजे से दिन में भी चिरागें जला कर स्मशान भूमि में ले जाते हैं। वहां पर चिता बनाकर वैसे ही बैठे हुए की की अंत्येष्ठि क्रिया नारियल, घी, चन्दन, आदि सुगन्धित वस्तुओं व लकड़ी जलाकर करते हैं। यदि लिटाकर दो बांस की रथी (सीढी) में ले जाते हैं तो उसको लेटे हुए ही जलाते हैं। अग्नि की आहुति बेटा या नजदीकी भाई या भतीजा देता है जिसको "लांपा" कहते हैं।

बखेर—

यह विशुद्ध राजस्थानी प्रथा है 'जिसमें किसी धनीमानी की मृत्यु हो जाने पर ऊंट पर कौड़ियों व पैसों, रुपयों आदि से छोटे बड़े थैले यथा सामर्थ्य भरे जाते हैं। सवार आगे आगे

चलने वाले महतर तथा भिखारियों को घर से लेकर स्मशान तक लुटाते हैं। इस रस्म को बखेर (उछाल) करना कहते हैं।

दण्डोत—

बैकुण्ठी या रथी के आगे आगे मृत व्यक्ति के पोते आदि, अगर कोई हो तो, साष्टांग दण्डवत् करते हुये बढते जाते हैं।

आधेटा—

घर और स्मशान गृह के बीज चौराहे पर रथी या बैकुण्ठी का दिशा परिवर्तन किया जाता है। अर्थात् अगर मृत व्यक्ति का मुंह पूर्व की ओर हो तो पश्चिम की ओर कर दिया जाता है। इस प्रथा को "आधेटा" कहते हैं। रथी या बैकुंठी ले जाने वाले चार व्यक्ति निकट सम्बन्धी ही होते हैं जिन्हें 'कांधिया' कहा जाता है। मृत व्यक्ति की अरथी के साथ चलते हुए लोग भजन गाते हैं—' हरि कहो-हरि कहो-श्री राम नाम सत्य है।" सत्य बोल्या गति हैं कि सत्य बोले गति है।" आदि आदि।

सातरवाडा—

अन्तिम संस्कार हो चुकने के बाद मृत व्यक्ति की अन्त्येष्ठि प्रयोजनार्थ गए व्यक्ति किसी कूए या तालाब पर स्नान कर मृत पुरुष के घर जाते हैं जहां घर का मुखिया संस्कार में सम्मिलित होने वाले लोगों के प्रति आभार प्रकट करता है एव वे लोग उसे धैर्य बंधाकर अपने अपने घर जाते हैं। १२ दिन तक मृतक के घर शोक की छाया रहती है। खबर सुनने वाले घर पर बैठने को आते हैं एवं मृतक के सम्बन्धियों को सांत्वना देते हैं। जिस दिन मौत होती है उस दिन घर में चूल्हा

नहीं जलाया जाता है। जब तक मृतक की अन्त्येष्ठि हेतु अर्थी घर से नहीं निकलती है तब तक मोहल्ले में भी चूल्हे नहीं जलाये जाते हैं। उक्त रस्मों को सातरवाड़ा कहते हैं।

फूल चयन—

स्मशान स्थल से अन्त्येष्ठि क्रिया के तीसरे दिन मृतक की कुछ हड्डिया जो जले वगैर रह जाती हैं सम्बन्धी इकट्ठे कर लाते हैं। इसे "फूल चुगना" कहते हैं। ये हड्डियां मृगछाल या रेशमी कपड़े में लपेट कर घर के बाहर किसी जगह सुरक्षित रखते हैं। जो उसी दिन या पीछे फिर कभी हरिद्वार, या गढमुक्तेश्वर में गगाजी की गोद में बहा दी जाती हैं। यदि हैसियत न हो तो ये अस्थियां पुष्कर या आस पास के किसी तीर्थ स्थल या नदी में बहायें जाने को भेज देते हैं।

तीया—

मृत्यु के तीसरे दिन मूंग व चावल पका कर घी और खांड मिलाकर अड़ौस पड़ोस के बच्चों को खिलाया लाता है। धनी-मानी रईसों के यहां तो ऐसे अवसर पर बड़े बूढ़े कई स्वजातीय व विजातीय भी खाते हैं। व्यापारी लोग तो इसी दिन उठावना अर्थात् सातरवाडा भी कर देते हैं।

गृह शुद्धि और मौसर—

बाहरवें दिन उत्तम कुल के ब्राह्मण से गृह शुद्धि या वैदिक हवन कराया जाता है और आम रिवाज के माफिक क्रिया करायी जाती है। इसी दिन या कुछ महिने अथवा एक वर्ष पश्चात मृत पुरुप की यादगार में अपनी जाति वालों को भोज

दिया जाता है। इसको मौसर या नुकता कहते हैं। भोज के पश्चात सभी घर वाले पुरुष मंदिर जाकर देव दर्शन करने के पश्चात घर पर आते हैं इसे गृह शुद्धि का रिवाज कहते हैं।

मौसर एक बडी कुप्रथा है। मौसर में जाति के सैकड़ों व्यक्तियों को न्योता दिया जाता है। कई व्यक्ति अपने जीवन-काल में ही अपना मोसर कर लेते हैं क्योंकि उन्हें डर रहता है कि कहीं उनके उत्तराधिकारी इस कर्तव्य को करेंगे या नहीं। कई व्यक्ति कर्जा लेकर भी मोसर करते हैं। कई बार जाति वाले भी मौसर करने के लिये मजबूर करते हैं। अब तो राज्य सरकार ने मौसर करने पर पावन्दी लगा दी है तथा इसे एक अपराध घोषित कर दिया है लेकिन फिर भी किसी न किसी नाम से लुके छिपे मोसर होते ही रहते हैं। ज्यादातर कम शिक्षित जातियों में मौसर ज्यादा होते हैं। शिक्षित व उन्नत जातियों ने तो मौसर पर प्रतिबन्ध सा लगा रखा है।

पगड़ी—

मौसर के दिन बड़े पुत्र को पगड़ी बांधी जाती है। प्रथम घर के मुखिया की तरफ से बंधती है और फिर भाई व गना-यक (सगे सम्बन्धी) की।

पानीवाडा—

जब किसी की मृत्यु दूसरी जगह हो जाती है और उसके समाचार आते हैं तो सम्बन्धी व घर वाले अपने स्वजातीय या इष्ट मित्रों को समाचार कहलाते हैं कि अमुक सज्जन की "सुनानी" (मृत्यु समाचार) आई है अतः आज अमुक स्थान पर पानीवाडा होगा। उसी जगह सब लोग इकट्ठे हो जाते

हैं और स्नान करके मृतक पुरुष के कुटुम्बियों के प्रति हमदर्दी प्रकट करते हैं। कुटुम्बी कम से कम तीन दिन तक उसी तरह सातरवाड़ा रखते है। इस प्रकार स्नान करने को पानी-वाड़ा कहते हैं। अन्त्येष्ठी संस्कार के बाद ही पानीवाड़ा होता है।

किसी निकट सम्बन्धी की मृत्यु हो जाने पर पुरुष तथा स्त्रियां शोक सूचक कपड़े पहनती हैं। ऐसे कपड़ों में स्त्रियां ओढ़ना तथा पुरुष साफा सफेद, काला, आसमानी या पक्का रंग का पहनते हैं। वे लगभग १ वर्ष तक या किसी मुख्य त्यौहार तक कोई त्यौहार नहीं मनाते हैं। यों यदि कोई व्याह आदि करना अत्यन्त आवश्यक हो तो जाति वाले इन शोक सूचक कपडों को उतरवा भी देते हैं। मृत्यु सूचक मृतक पुरुष के भाई, लडके, पोते आदि अपनी दाढ़ी, मूंछ व सिर मुंडवाते हैं।

विभिन्न धर्मावलम्बियों के पर्व एवं त्यौहार

राजस्थान में मुख्य रूप से हिन्दू, मुसललान, जैन, सिख व ईसाई धर्मावलम्बी पाये जाते हैं। इनमें हिन्दुओं की संख्या सर्वाधिक है। मुसलमान व जैन भी काफी संख्या में पाये जाते है। हिन्दुओं में अनेक जातियां एवं उपजातियां हैं जिनको निश्चित संख्या ही बताना कठिन है। कुछ मुख्य जातियां हैं- ब्राह्मण, राजपूत, महाजन, या वैश्य, चमार, मीणा, गूजर, माली, भील, जाट, अहीर, ठाकुर, सौंधियां, भांबी, बलाई, थोरी, बावरी धाणका, डाकोत, दरोगा, रावत, सांसी, खटीक, कलाल, डांगी, धांची, नाई. धोबी, दर्जी मेर, चिता आदि आदि।

इसी तरह मुसलमानों में शेख, पठान, मुगल, सैयद, आदि अनेक जातियां तथा उप जातियां-तेली, रगरेज, बिसाती, लोहा, कुंजड़ा, सीलवार, मीरासी, जुलाहा आदि पाई जाती हैं। इनमें भी हिन्दुओं की भांति विवाह वादी तथा खानपान अलग अलग होता है। यदि कोई इस मर्यादा को तोड़ता है तो उसका हुक्का पानी तक बन्द कर दिया जाता है। अनेक ऐसी जातियां राजस्थान में हैं जो धर्म से मुसलमान है परन्तु उनके आचार व्यवहार आदि हिन्दुओं जैसे ही हैं। इन लोगों को हिन्दु व मुसलमान के बीच की जातियां कहा जा सकता है। इनमें खान जादा, कायमखानी, मलकाना, मेव, मेरात आदि

मुख्य हैं। ये लोग कभी हिन्दू थे और बाद में अनेक कारणों से (जबरदस्ती, लोभ आदि) से मुसलमान हो गये फिर भी इन्होंने अपने हिन्दू रीति रिवाजों को नहीं छोड़ा हैं, हिन्दू व मुस्लमान दोनों त्यौहारों को मानते हैं, विवाह में हिन्दू धर्म के अनुसार वेदो के चारों ओर फेरे (भंवरें) भो पड़ते हैं और मुसलमानी धर्म के अनुसार उन्हें काजी नमाज भी पढ़ाता है। हिन्दुओं की भांति ही पुरुष धोती तथा स्त्रियां लहंगा (घाघरा) पहनती है।

जैन—

जंन दिगम्बर व श्वेताम्बर दो सम्प्रदायों में बंटे हुए हैं। दिगम्बरों में कोई खास भेद नहीं हैं। किन्तु श्वेताम्बरों में मुर्ति पूजक, साधुमार्गी ये दो मुख्य भेद हैं। साधुमार्गियों में में तेरापंथी, स्थानकवासी प्रसिद्ध हैं। दिगम्बर जैनियों के अष्टान्हिका, सोलहकारण, दशलाक्षणिक तथा रत्नत्रयव्रत मुख्य पर्व हैं।

अष्टान्हिका—

हर चौथे माह आषाढ़, कार्तिक एवं फाल्गुण के शुक्ल पक्ष में अष्टमी से आरंभ होकर पूर्णमासी तक आठ दिन का मनाया जाता है। इसमें आठवें नन्दीश्वर द्वीप में स्थित बावन जिन चैत्यालयों की पूजा होती हैं तथा व्रत उपवास आदि करते हैं।

सोलहकारण—

यह भाद्रपद कृष्णा १ से प्रारम्भ होकर आश्विनकृष्णा १

तक चालू रहता है। इन दिनों दर्शन विशुद्धि, विनयसम्पन्नता शीलव्रतेष्वनतिचार अभीक्ष्णज्ञानोपयोग, सवेग, शक्तितस्त्याग शक्तितस्तप, साधु समाधि, वैयावृत्य, अर्हद्भक्ति, आचार्य भक्ति, वहुश्रुत भक्ति, प्रवचन भक्ति, आवश्यकापरिहाणि, मार्गप्रभावना, और प्रवचन वात्सल्य इन सोलह भावनाओं का अनुचिंतन किया जाता है और इनके स्वरूप का अध्ययन अथवा श्रवण करके व्रत उपवास आदि यथा शक्ति करते हैं।

दशलक्षण—

यह पर्व दिगम्बरों में भाद्रपद शुक्ला पंचमी से चतुर्दशी तक तथा श्वेताम्बरों में भाद्रपद कृष्णा एकादशी से शुक्लपक्ष की पचमी तक दस दिन का मनाया जाता है। सभी जैन इन दिनों यथाशक्ति दान तप आदि करते हैं। प्रति दिन क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन और ब्रह्मचर्य इन दशधर्मों का स्वरूप प्रतिदिन श्रवण करते है तथा अध्ययन एवं मनन भी करते हैं।

सुगंधदशमी—

यह पर्व भाद्रपद शुक्ला दशमी को मनाया जाता है। सभी जैनी मंदिरों में जाकर धूप खेते हैं एवं यथाशक्ति व्रत उद्यापन आदि करते हैं। इसकी कथा इस भांति है—किसी समय पद्मनाभ नाम के राजा हुए। उनकी रानी श्रीमती ने जैन साधु को द्वेष वश कड़वी तूम्बी का आहार दिया। उससे वे वेहोश हो गये। राजा को जब मालूम पड़ा, रानी को महलों से निकाल दिया। उसे कोढ भी हो गया था। पाप के फल से भैंस, सूकरी, कुतिया, आदि के जन्म धारण कर चांडाली के

पुत्री हुई। उसके तमाम शरीर से अति दुर्गन्ध आती थी। किसी समय दैववंश साधु के दर्शन किये और अपने पाप का स्मरण कर पश्चाताप किया एवं शान्त भाव से मरण कर एक गरीब ब्राह्मण के कन्या जन्म लिया। एक समय वृक्ष में सुदर्शन मुनि के दर्शन किये। उन्होंने पहले जन्म की याद दिलाई। अपने पापों को याद कर बहुत दुःखी हुई और प्रायश्चित्त स्वरूप सुगंध दशमी का व्रत ग्रहण किया। दश वर्ष तक व्रत का पालन करती रही। इसके दूसरे जन्म में जिनदत्त सेठ के घर तिलकमती नाम से पैदा हुई। इसके एक बन्धुमती नामक सौतेली मां भी थी। इसकी लड़की का नाम तेजोमती था।

एक समय जिनदत्त परदेश गया। उसके पीछे जो भी संबंध करने आते वे तिलकमती को ही पसंद करते थे। सौतेली मां ने सगाई तो तिलकमती के साथ कर दी और फेरों के समय तिलकमती को स्मशान में भेज दिया। उससे यह कहा कि तेरा पति यहीं आवेगा। आधीरात के समय राजा ने महल में से तिलकमती को स्मशान में बैठे देखा। वह हाथ में तलवार लेकर स्मशान में तिलकमती के पास पहुँचा और पूछा तू कौन है? तिलकमती ने कहा—राजा ने मेरे पिता जिनदत्त सेठ को रतनदीप भेज दिया है। मेरी मां मुझे यहां बैठा गई है, कहा है तेरा पति यहां आवेगा। राजा ने वहीं उससे व्याह कर रात भर उसके साथ रहा। सुबह होते ही अपने महल चला गया, और कह गया 'हर रात तेरे पास आया करूंगा। मेरा नाम गोप है।'

उधर जो लड़का व्याहने आया था उसके साथ तेजोमती का व्याह कर दिया। सुबह जब तिलकमती वापिस घर

पहुंची। उससे पूछा—'तुझे कैसा पति मिला? उसने कहा—'मेरे पति का नाम गोप है।' राजा प्रत्येक रात उसके पास आता था और दीपक के अभाव में अंधेरे में ही रात भर रह कर सुबह वापिस चला जाता। एक दिन सौतेली मां की आज्ञा से उसने अपने पति (राजा) से दो झाड़ू लाकर देने को कहा। राजा ने रत्नजड़ित सोने की झाड़ू लाकर अगली रात उसे दे दी। उसकी सौतेली मां ने सोने की झाड़ू देखकर कहा 'तेरा पति तो चोर है।' ये राज के यहां के गहने, कपड़े और झाड़ू आदि लाकर तुझे उसने दिये हैं। इसी समय परदेश से उसका पति वापिस आ गया। उसने सब हाल सुनकर गहने, कपड़े और झाड़ू आदि राजा के सामने उपस्थित कर दिये। राजा ने कहा—'इनके चोर को पकड़ कर लाओ।' तिलकमती से जब पूछा गया तब उसने उत्तर दिया—'मैं तो पैर धोकर ही मेरे पति को पहचान सकती हूं। राजा ने यह बात सुनी और चोर पहिचानने के लिये शाम को सेठ के घर गये वहां जनता भी इकट्ठी हो गई थी तिलकमती हर एक के पैर धोती और कहती—'यह मेरा पति नहीं है।' अन्त में जब राजा के पैर धोये—'तब उसने कहा ये मेरे पति हैं।' राजा ने उसे स्वीकार किया और सब कथा सुनाई। तभी से यह सुगंधदशमी का व्रत चालू हुआ और अब तक मनाया जाता है।

रत्नत्रय व्रत—

यह व्रत भाद्रपद शुक्ला त्रयोदशी से पूर्णमासी तक किया जाता है। इन तीन दिनों में सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक चारित्र इन रत्नत्रय का सब कोई स्वरूप सु ते हैं और समझने का प्रयत्न करते हैं। जैन दर्शन के अनुसार दर्शन, ज्ञान

और चारित्र इन तीनों की एकता के बिना सच्चे धर्म की प्राप्ति नहीं हो सकती। जिस प्रकार वैद्य द्वारा दी गई औषधि पर विश्वास, औषधि लेने की विधि का ज्ञान और उसके बाद औषधि के लेने से ही रोग दूर हो सकता है उसी तरह सच्चे धर्म आत्म-स्वरूप) का विश्वास करके, उसका ज्ञान प्राप्त करने के बाद चारित्र का पालन करने से ही सांसारिक दुःख दूर हो सकते हैं।

क्षमावणी पर्व—

यह आश्विन कृष्णा एकम को मनाया जाता है। इस दिन भाद्रपद मास में होने वाले सभी पर्व पूरे हो जाते हैं। उनकी समाप्ति के समापन कार्य के सम्पादन के रूप में यह पर्व मनाया जाता है। सभी जैनी एक जगह इकट्ठे होकर एक दूसरे से अपने दोषों की क्षमा मांगते हैं एवं दिल से क्षमा करते भी हैं। पारस्परिक द्वेष को दूर करना ही इस पर्व का मुख्य उद्देश्य है।

दीपमालिका—

इसे भारत में सब कोई मनाते हैं। कार्तिक कृष्णा अमावस्या को प्रातःकाल अंतिम तीर्थंकर महावीर स्वामी का निर्वाण हुआ था। यही कारण है जैनियों का यह मुख्य त्यौहार है और महावीर स्वामी की स्मृति में सभी कोई अपने अपने घरों में दीपावली का विशेष आयोजन करते हैं।

वीर जयन्ती—

चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को महावीर स्वामी का जन्म

हुआ था। उसी स्मृति में यह त्यौहार बराबर मनाया जाता रहा है।

अक्षयतृतीया—

अक्षय तृतीया–वैशाख शुक्ल तीज के दिन प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथ स्वामी ने छः मास के उपवास के बाद आहार लिया था। तभी से यह दिन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इसे विवाह आदि शुभ कार्यों के लिए पवित्र दिन माना गया है। बिना मुहूर्त्त देखे भी इस दिन विवाह आदि कार्य किये जा सकते हैं।

रक्षा बन्धन–

यह त्यौहार भी जैनी अपना ही मानते है। इस दिन विष्णुकुमार मुनि ने अपने तपोबल से हजारों मुनियों को जलाये जाने से बचाया था। धूएं आदि का कष्ट के कारण मुनियों की परेशानी को देखते हुए, उन्हें सेवइ चावल आदि का हलका आहार दिया गया था। वही अब भी सब कोई अपने अपने घर बनाते खाते हैं।

राजस्थान में भारत के विभाजन के पश्चात सिक्ख धर्मावलम्बियों में भी काफी वृद्धि हुई है। इस धर्म के अनुयायी निराकार ईश्वर में विश्वास करते हैं और गुरु ग्रंथ साहब की पूजा करते हैं। इस धर्म की स्थापना आदि गुरु नानक द्वारा की गई थी और गुरु गोविन्दसिंह उनके आखरी गुरु थे। मुस्लिम शासनकाल में, विशेषकर औरंगजेब के राज्य काल में इस धर्म के अनुयायियों पर बहुत अत्याचार किये गये थे

और इस कारण इन्हें आत्म रक्षा के लिए तलवार सहारा लेना पड़ा था।

जैन व सिक्ख धर्मावलम्बी जातियां काफी समय से हिन्दुओं की ही एक अंग माने जाती रही हैं।

मुसलमानों की तरह इसाई धर्म भी राजस्थान में बाहर से आया हुआ है एवं अंग्रेजी शासन काल में यहां के हिन्दुओं को धर्म परिवर्तित कर ईसाई बनाया गया। ये राजस्थान में ज्यादातर बड़े शहरों में बसे हुए हैं। इनके रीति रिवाज हिन्दु व मुस्लिम रिवाजों से भिन्न होते हैं। राजस्थान में मेथोडिस्ट, रोमन कैथोलिक, एंग्लिकन व प्रोटेस्टेंट इसाई मिलते हैं।

राजस्थान के मुख्य मुख्य मूल रीति रिवाजों की चर्चा करने से पहले विभिन्न धर्मावलम्बियों द्वारा मनाये जाने वाले पर्वों व उत्सवों की परिचर्चा संक्षेप में यहा पर की जा रही है।

हिन्दू धर्म एक समन्वयात्मक धर्म है जिसमें सैंकड़ों मत मतान्तर व सम्प्रदाय पाये जाते हैं। इनमें कुछेक ही महत्वपूर्ण है। अन्यों का महत्व केवल स्थानीय है और अनेक मतावलम्वी राजस्थान के बाहर पाये ही नहीं जाते हैं। एकेश्वरवादी बहुदेव वादी, भक्ति मार्गी, ज्ञान मार्गी, पुष्टिमार्गी, यहां तक कि नास्तिक भी हिन्दु ही माना जाता है। पुरातनवादी, सनातन-वादी और एकदम आधुनिक सभी इस घेरे में बधे हैं। हिन्दू धर्म का त्याग केवल धर्म परिवर्तन अर्थात् मुसलमान या इसाई बनने के बाद ही सम्भव है। चूंकि हिन्दू एक धर्म की अपेक्षा समाज के रूप में व्यापक है अतः मूल रूप से प्रचलित रीति रिवाज व सामाजिक नियम व विभिन्न संहिताओं में स्थापित

किये गये विधानों का वह त्याग नहीं कर सकता है जब तक कि किसी विशिष्ट व्यवस्था द्वारा उसे छूट न मिल जावे ।

विभिन्न संप्रदायों एवं भांति भांति के उपास्य देवों के होने के कारण रीति रस्मों में बहुलता आ गई है । वर्ष का कोई भी ऐसा माह नहीं जिसमें दो चार पर्व या त्यौहार नहीं पड़ते हैं । इनके मुख्य पर्व दिवस हैं-रामनवमी, मेष संक्रान्ति, महावीर जयन्ती, वैशाख पूर्णिमा, दशहरा, नाग पंचमी, रक्षा बन्धन, कृष्णाष्टमी, अनन्त चतुर्दशी, गणेश चतुर्थी महालया (श्राद्ध) दीपावली, भ्रातृ द्वितीया, चित्रगुप्त पूजा, अक्षय नवमी, छठ देवोत्थान, गोपाष्टमी, कार्तिक पूर्णिमा, विवाह पंचमी, तिल संक्रान्ति, कुम्भ, वसन्त पचमी, माघी पूर्णिमा, शिवरात्रि एवं होली, अक्षय तृतीया, रक्षाबन्धन, गणगौर, शीतलाष्टमी, श्रावणी तीज, आदि ।

मुसलमानों के मुख्य पर्व निम्नलिखित हैं :—

ईदुल जोहा—

इसे वकरीद भी कहते हैं । यह मुसलमानों के महान पर्वों में से एक है । ईदुलजोहा का अर्थ है कुरवानी । कहा जाता है कि अरवों के धार्मिक गुरु अब्राहम को स्वप्न आया कि वह अपनी सबसे प्रिय वस्तु ईश्वर के नाम पर बलिदान कर दे । अतः उसने अपने प्रिय पुत्र इस्माइल को कुरवानी कर दी । लेकिन जब चादर हटाई गई तब एक भेड़ कटी हुई मिली । लड़का स्वस्थ ही मिला । अब उसी के प्रतीक स्वरूप बकरे, भेड़ आदि की कुरवानी की जाती है तथा उसका मांस अपने पड़ोसियों में वितरित किया जाता है । इस पर्व का सामाजिक

उद्देश्य आपसी प्रेम बढ़ाता है। यह जिल्काद की दसवीं तारीख को मनाया जाता है।

ईदुलफितर–

इसे रमजान की ईद भी कहते हैं। इस्लाम धर्म में नमाज, रोजा, जकात और हज का बड़ा महत्व है। रमजान के महीने में मुसलमान रोजा, (व्रत) रखते हैं। रोजे रमजान महीने का अन्त होने पर समाप्त करते हैं। इस महीने में मुसलमान दिन में न तो कुछ खाते हैं और न पीते हैं। संध्या होने पर नमाज पढ़कर हल्का भोजन करते हैं। इदुलफितर रोजा की समाप्ति पर मनाया जाता है। महीने की समाप्ति पर चन्द्रदर्शन के दूसरे दिन ईद मनाई जाती है। इस दिन खैरात बांटना और सामूहिक नमाज पढ़ना आवश्यक है प्रत्येक मुसलमान एक दूसरे से बराबरी के आधार पर मिलता है तथा अपनी आय के अनुसार दान देता है।

मुहर्रम–

यह मुसलमानों का शोक मनाने का त्योहार है। मुहम्मद के नाता हुसेन इमाम के बलिदान के उपलक्ष्य में यह त्योहार १० दिन तक उपवास कर मनाया जाता है। हसन इमाम पैगम्बर के उत्तराधिकारी के रूप में अपने आपको बतलाते थे परन्तु दूसरी और मजीद खलीफा बनाया गया। इस बात पर (ई० सन् ६८०=ई० सन् ६१) में युद्ध छिड़ गया। दोनों दलों की सेनायें दमिश्क में उतरी। अन्त में हसन सपरिवार अल्लाह के प्यारे हो गये। अन्तिम समय में उन्होंने पानी की एक एक बूंद के लिए तड़फ तड़फ कर प्राण छोड़े। इस घटना

की याद बनाये रखने के लिए प्रति वर्ष इमाम हुसैन के प्रतीक में बांस की कमचियों और रंगीन कागजों से ताजिये बनाये जाकर उन्हें जुलूस के रूप में प्रदर्शित किया जाता है एवं दसवें दिन कब्रिस्तान, तालाब या नदी में दफना दिया जाता है। जुलूस के लोग "हाय हुसैन, हाय हुसैन," कहकर छाती भी पीटते हैं। वे झूंठी लड़ाई का खेल भी खेलते जाते हैं तलवार, बान बनैठी आदि भांजते हैं। इस प्रकार खेल कूद करते ताजियों को दफना देने के बाद घर लौट कर उपवास तोड़ते हैं और गरीबों को दान देते हैं। इस दिन "झरना" नामक गीत भी गाया जाता है। कहा जाता है कि ताजियों का प्रचलन भारत में तैमूरलंग ने किया था।

चेहल्लुम–

मुहर्रम के ४० दिनों के बाद सफर मास की बीसवीं तारीख को यह पर्व मनाया जाता है। इस अवसर पर भी ताजिये निकाले जाते हैं और उन्हें दफना दिया जाता है।

शबेबरात–

सावन की १५ वीं तारीख को यह पर्व मनाया जाता है। "शब" का अर्थ है रात और "बरात" का अर्थ है छूटना अर्थात् वह रात जब मुक्ति मिलती है। मुसलमानों में ऐसा माना जाता है कि इस रात्रि में सभी मनुष्यों के कर्मों की जांच पड़ताल कर उनके कर्मानुसार भाग्य निर्धारित किया जाता है। अतः मुसलमान इस रात को अपने किये पापों के लिए खुदा से माफी मांगते हैं। इस रात को आतशबाजी की जाती है एवं खुशियां

मनाई जाती है। मकानों की सफाई की जाती है तथा उन्हें सजाया भी जाता है।

आखरी चहार शुम्बा—

सफर महीने में आखरी बुधवार के दिन यह पर्व मनाया जाता है। कहा जाता है कि इस दिन पैगम्बर साहब अन्तिम रोग शय्या पर पड़े पड़े किञ्चित स्वस्थ हो गये थे।

बारावफात

इस त्योहार को ईदमिलाद भी कहते हैं। रवीउल्ल अव्वल महीने की १२ वीं तारीख को यह पर्व पड़ता है। मुहम्मद साहब के पवित्र जन्म और मृत्यु की स्मृति में यह पर्व मनाया जाता है कुछ इसे जन्म का दिन मानते हैं तो कुछ मृत्यु दिवस।

उर्स मोहोनुद्दीन चिश्ती—

फकीर मोहीनुद्दीन तिश्ती भारत में एक प्रसिद्ध व्यक्ति हो गये हैं। यह अजमेर में रहते थे और वहीं पर उनकी समाधि है यहां पर सात दिनों का उर्स का मेला लगता है किसी जमाने में वादशाह अकवर भी यहां उर्स में शामिल होने के लिए पैंदल ही आया करता था। आज भी भारत तथा पाकिस्तान के हजारों मुसलमान इस उर्स में शामिल होते हैं।

ईसाई पर्वों में मुख्य ये है—

नव वर्ष दिवस: ईस्वी सन की पहली जनवरी को यह दिवस मनाया जाता है जिसमें वधाइयां व शुभ सदेश भेजने का रिवाज है। ईसा का खतना इसी दिन हुआ था।

ईस्टर : यह ईसाईयों का प्रधान पर्व है। इनकी धारणा है कि इन दिनों में ईसामसीह पुर्नीजीवित हुए थे। यह २० मार्च और २२ अप्रैल के बीच में पूर्णिमा के बाद के रविवार को पड़ता है यह दिन ईसाई बड़ी धूमधाम से मनाते हैं।

गुड़ फ्राईडे : ईस्टर के रविवार के ठीक पहले पड़ने वाले शुक्रवार को यह पर्व मनाया जाता है।

फूलसडे : यह प्रति वर्ष प्रथम अप्रेल के दिन मनाया जाता है। इस दिन आपस में हंसी मजाक किये जाने का रिवाज है एवं एक दूसरे को बेवकूफ भी बनाते हैं।

क्रिस्मसडे : यह पर्व ईशामसीह के जन्म से सम्बन्धित है। ईसा का जन्म ई० पूर्व ४ की २५ दिसम्बर को हुआ था। अतः इस दिन ईसाई लोग बड़ा उत्सव मनाते हैं एवं एक दूसरे को उपहार और बधाइयां देते हैं।

हिन्दू त्यौहार—

जन्मोपरान्त मनुष्य का अस्तित्व समाज में ही होता है। समाज में चालू सभी रस्मों की अदायगी व्यक्ति मात्र की अनिवार्य परम्परा होती है अन्यथा वह समाज से अलग समझा जाता है। पारिवारिक रस्में तो होती ही हैं व्यक्तिगत रस्में भी होती हैं। परन्तु समाज में सामूहिक रूप से मनाये जाने वाली रस्में परम्परागत एवं सांस्कृतिक जिन्दादिली की प्रतीक होती हैं।

त्योहार, पर्वोत्सव, मेले और अन्य धार्मिक उत्सव इतने होते हैं कि वर्ष का कोई भी सप्ताह इनसे अछूता नहीं बचता है। राजस्थान में बलिदान की कहानियों से ओत प्रोत

सांस्कृतिक परम्पराएं देश क्या दुनिया के किसी भाग में अपना सानी नहीं रखती है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि उच्च आदर्शों पर मर मिटने वाले यहां के नर-नारियों के जीवन में उल्लास और उमंग के श्रोत प्राचीन काल से बहते आ रहे हैं। यही कारण है कि राजस्थान में मेलों और त्यौहारों का विशेष महत्व रहा है। ईश्वरीय शक्ति में अटूट विश्वास एवं उसमें चमत्कार की आस्था ने यहां अनेक पर्वों और धार्मिक अवसरों का पारस्परिक रूप से निर्माण किया है एवं राजस्थान के रिवाजों के वे प्रमुख अंग बन चुके हैं।

राजस्थान में सामान्यतः वे ही त्यौहार व पर्व मनाए जाते हैं जो विभिन्न भारतीय प्रान्तों में मनाए जाते हैं। इनके अलावा भी राजस्थान के कुछ विशिष्ट त्यौहार व पर्व हैं। नीचे हम ऐसे पर्वों व उत्सवों की तालिका दे रहे हैं जो राजस्थान में मनाये जाते हैं :—

अंग्रेजी माह	भारतीय माह	पर्व व त्यौहारों की सूची
जनवरी	माघ	१–मकर संक्रान्ति
फरवरी		२–वसन्त पंचमी
		३–शिवरात्रि
		४–माघी चैत्य चौथ
		५–सूर्य सप्तमी
फरवरी	फाल्गुण	१–होली
मार्च		२–धुलण्डी
मार्च	चैत्र	१–रामनवमी
अप्रेल		२–गणगौर

		३-शीतलाष्टमी ४-धुड़ला ५-नवरात्रि ६-हनुमान जयन्ती
अप्रेल मई	बैशाख	१-अक्षय तृतीया २-परशुराम जयन्ती ३-बुद्ध जयन्ती
मई जून	ज्येष्ठ	१-निर्जला एकादशी २-गंगादशहरा ३-वट सावित्री व्रत
जून जुलाई	आषाढ़	१-रथ यात्रा २-हरिशयनी एकादशी ३-गुरु पूर्णिमा
जुलाई अगस्त	श्रावण	१-रक्षा वन्धन २-छोटी तीज ३-शिवव्रत ४-मंगलागौरी पूजन ५-नाग पंचमी
अगस्त सितम्बर	भाद्रपद	१-जन्माष्टमी २-अनन्त चतुर्दशी ३-गणेश चतुर्थी ४-वड़ी तीज ५-गोगा पंचमी

		६–चांना छट ७–गोगा नवमी ८–ऋषि पंचमी
सितम्बर अक्टूबर	आश्विन	१–श्राद्ध पक्ष २–दशहरा ३–नवरात्रि ४–शरद पूर्णिमा
अक्टूबर	कार्तिक	१–दीपावली २–भैया दूज ३–देवोत्थान एकादशी ४–गोपाष्टमी ५–व्रत पूजन ६–तारा भोजन ७–धनतेरस ८–गोवर्द्धन पूजा ९–कर्वा चतुर्दशी
नवम्बर दिसम्बर	मार्गशीर्ष	१–गीता जयन्ती
दिसम्बर जनवरी	पौष	१–मल के नेगचार

राजस्थान में उत्सव और त्यौहारों की अधिकता के साथ साथ मेले भी काफी मात्रा में लगते हैं। वैसे तो यहां पर छोटे बड़े सभी त्यौहारों पर छोटे बड़े मेले लगते हैं जिनमें उस

त्योहार के रिवाज के अनुसार स्त्री पुरुष इकट्ठे होते हैं परन्तु कतिपय मेले अपने आप में पर्वोत्सव होते हैं। कई मेले आर्थिक कारणों से भी लगते हैं जैसे पशु मेलों का आयोजन, पुष्कर, नागौर, परवतसर, तिलवाड़ा आदि स्थानों पर समय समय पर पशु मेलों का आयोजन होता है। ये मेले राजस्थान में ही नहीं अपितु समस्त भारत में प्रख्यात हैं। कुछ मेले जन कल्याण कारी, असाधारण कार्य करने वाले वीरों, लोकनायकों की स्मृति, उनकी पूजा और सम्मान की भावना प्रदर्शित करने के कारण प्रचलित हैं जिनमें रूणेचा के बाबा रामदेव और वीर तेजा के मेले उन्हीं भावनाओं पर आधारित हैं। इन मेलों में भारत के कोने कोने से यात्री आते हैं और लोकनायकों की स्मृति में गीत गाते हैं। इन लोकनायकों के गीतों का कोई अन्त नहीं है।

रूणेचा के पीर की 'खम्मा खम्मा' का गीत सर्वत्र गूंज उठता है। वीर तेजाजी के वचनबद्ध बलिदान की कहानी आज भी राजस्थानी वीरों की प्रेरणा का श्रोत है। शौर्य एवं बलि-दान के प्रतीक गोगाजी, जो गोरखनाथ संप्रदाय के अनुयायी थे का सांपों पर पूर्ण आधिपत्य था। जब किसी को सांप डस लेता है तो गोगाजी के नाम की तांती बांधने से कष्ट का हरण होता है। ऐसी राजस्थानी मान्यता ही वीर पुरुषों का पूजन कराती है।

अब हम मुख्य पर्वो और त्योहारों के अवसर पर मनाए जाने वाले रीति रिवाजों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करते हैं जिनसे ज्ञात होगा कि इन त्योहारों ने राजस्थानी संस्कृति को जीवित रखने में बड़ा योगदान दिया है।

राजस्थान में एक कहावत है "तीज त्यौहारा बावड़ी, लै डूबी गणगौर"–अर्थात्, राजस्थान के पारस्परिक त्यौहारों में वर्ष का प्रारम्भिक त्यौहार श्रावणी तीज एवं आखरी त्यौहार गणगौर को मानते हैं। अतः हम उसी क्रम में अर्थात् श्रावणी तीज को प्रारम्भिक त्यौहार के रूप में मानते हुए परिचर्चा प्रारम्भ करते हैं।

श्रावणी तीज–

यह त्यौहार खास तौर से बालिकाओं का त्यौहार है एवं भारत भर में यह राजस्थानी त्यौहार प्रसिद्ध है। यह श्रावण शुक्ला तृतीया के अवसर पर मनाया जाता है एवं भाद्रपद कृष्णा तृतीया को पूरक रूप में बहुओं के लिये इस त्यौहार की मान्यता है। इस दिन लड़कियों तथा बहुओं का पकवान्नों से स्वागत किया जाता है। लड़की अगर ससुराल हों तो वहां पर मिठाई व कपड़े भेजे जाते हैं। भाभियाँ अपनी ननदों का भी इसी प्रकार से सम्मान जताती हैं। स्त्रियाँ झूला झूलती हैं तथा नृत्य करती हैं। ससुराल की अपेक्षा यह त्यौहार पीहर में अधिक स्वच्छन्दता से मनाया जाता है। अतः जो लड़कियां ससुराल में होती हैं वे अपने पीहर की याद में गीत गाती है—

आयो आयो मा, सावणीये रो ए मास, मने भेजी मा, सासरे जे।

आरे सहेली, मां, खिलण मिलण ने ए जाय मने दोनों पीसण जे.... .. ....

ससुराल के काया कष्टों को याद करती हुई गीत गाती हैं—

औरा न तो मां - मिरियो मिरियो, ए थीव,
मने मिरियों, मां तेल को जे ।
आयो आयो, मां. पीवरिये रो ए काग
वो झपके लेग्यों, मा, भांडियो जे,
भागी दौड़ी मां, कागलिये रे लार,
कांटों लाग्यो, मां, केर को जे,
लेज्या लेज्या म्हारे पीवरिए रा रे काग-
जाय दिखायै म्हारी माय ने जे ।

अर्थात् ससुराल में और सदस्यों को तो एक एक मिरिया घी का मिलता है जबकि मुझे एक मिरिया तेल का ही। ऐसे काल में हे माता ! पीहर का कौवा जो आया तो हाथ का झंडिया (बर्तन) ही ले उड़ा। लाचार मैं उसके पीछे दौड़ी कि इस बर्तन के साथ मुझे भी यह कौवा पीहर तक ले जाता। ऐसे में दौड़ते वक्त पैरों में कीर का कांटा चुभ गया है अतः हे पीहर के कौवे ! मुझे पीहर में ले जाकर मेरी माता को तो दिखा।

मनोरंजन के साथ साथ करुण रस का यह सामञ्जस्य इस त्यौहार की विशिष्टता में चार चान्द लगा देता है। साथ ही पावस ऋतु का इस काल में होना तो सोने में सुहागे का काम करता है। एकत्रित स्त्रियों के समूह की स्वरलहरी वातावरण को मुग्ध कर देती है, जब वे गाती हैं—

मोटी - मोटी छींटो मोसर्‌यो - ए वादली,
ओसर्‌यो ए वादली,
कोई जोड़ा ठेलम ठेल, सुरंगी रुत आई म्हारे देस
भली रुत आई म्हारे देश,
ओ कुण वीजे वाजरो ए वादली, वाजरो ए वादली,

ओ कुण बीजै मोठ मेवा मिसरो,
सुरगी रुत आई म्हारे देश ।

भाद्रपद शुक्ला की तृतीया को सधवा स्त्रियां व्रत (उपवास) रखती हैं व नये वस्त्र धारण करती हैं। तृतीया को दिन भर निर्जला व्रत किया जाकर सांयकाल शिव व पार्वती की पूजा करती हैं एवं रात्रि में चन्द्रदर्शन करके भोजन करती हैं। यह सौभाग्य का व्रत माना जाता है।

दोनों ही तीज के दिन नगरों एवं गांवों में तीज के मेले भरते हैं एवं तीज की सवारी निकलती है। जिसके दर्शनार्थ सैंकड़ों स्त्री पुरुष इकट्ठे होते हैं।

श्रावण मास में मनाये जाने वाले अन्य पर्व एवं त्यौहारों में शिव व्रत, मंगला गौरी पूजन, नाग पंचमी एवं रक्षा बन्धन के त्यौहार निम्न प्रकार से मनाये जाते हैं—

श्रावण मास का प्रत्येक सोमवार शिव पूजन का बार माना जाता है जिस दिन अधिकांश स्त्री-पुरुष ब्रत रखते हैं एवं शिवजी की पूजा करते हैं। पुरुष इस मास में बाल नहीं कटाते हैं।

श्रावण मास में जितने भी मंगलवार होते हैं वे मंगला गौरी व्रत के दिन होते हैं। उन दिन काफी स्त्रियां उपवास रखती हैं तथा मंगलागौरी का भजन करती हैं। इन किये गये उपवासों की संख्या १६ या २० होने पर मंगला गौरी का उद्यापन किया जाता है इस समय परिवार व मोहल्ले की औरतों को भोजन के लिए आमंत्रित किया जाता है।

श्रावण शुक्ला पंचमी को नाग की पूजा होती है। ऐसा कहा जाता है कि इस त्यौहार को मनाने से सांप का भय जाता

रहता है। श्रावण कृष्णा पंचमी को उत्तर भारत में नाग की पूजा की जाती है जो कि प्राचीनकाल से नाग पूजा की स्मृति मात्र है। अब इस अवसर पर राजस्थान में एक रस्सी को सात गांठ लगाकर सर्प का प्रतीक मानकर पूजा की जाती है। इस दिन जिन औरतों का पीहर उसी ग्राम में होता है उन्हें इस उत्सव में शरीक होने के लिए बुलाया जाता है।

रक्षाबन्धन—

श्रावण की पूर्णमासी के दिन रक्षाबन्धन मनाया जाता है। इसे राखी पर्व भी कहते हैं। इसके दो दिन पहले ही गृह की हर देहली पर चित्र बनाये जाने का रिवाज है। ये चित्र गेरू (लाल रग की एक विशेष मिट्टी) से बनाये जाते हैं। ऐसे चित्रों को राजस्थानी में 'सूरण' कहते हैं। जो सगुण का अपभ्रंश है। इन चित्रों को देवता का प्रतीक मानते हैं एव शुभ भी माना जाता है। रक्षाबन्धन के दिन मनुष्य किसी तालाब, जोहड़ अथवा नदी किनारे स्नान करते है स्त्रियां घरों में ही स्नान करती हैं। सभी परिवार अपनी अपनी हैसियत के अनुसार इस दिन मिष्ठान्न बनाते हैं। पहले उन बनाये गये सूरणों (चित्रों) को भोग लगाते हैं तत्पश्चात भोजन करते हैं। इसी दिन बहिन अपने भाइयों की कलाई में सूत का धागा (राखी) बांधती है एव भाइयों का मुंह मीठा कराती हैं। बदले में भाई बहिनों को यथा शक्ति भेट देते हैं।

"हरियाली अमावस्या" जो श्रावण मास में मनाई जाती है, के दिन स्त्री पुरुष श्रावण की हरियाली का आनन्द उठाते हैं। कुमारी कन्याओं के लिए 'उब छट' का त्योहार इसी मास में आता है। कुमारियां इस दिन न तो बैठती हैं और न दिन

भर कुछ खाती ही हैं। रात्रि में चन्द्र दर्शन के पश्चात ही भोजन करती हैं।

राजस्थान में श्रावण मास में सब से अधिक त्योहार आते हैं। जिन स्थानों पर अधिक वर्षा होती है वहां के लोग इन त्योहारों का आनन्द उठाते हैं और झुण्ड के झुण्ड किसी न किसी बड़े तलाब के किनारे झूमते गाते आने वाले वर्ष के लिए मंगल कामना करते दिखाई पड़ते हैं। परदेश में रहने वाले लोग भी इन दिनों अपने घरों को लौट आते हैं।

भाद्र पद माह में तीज, जिस की चर्चा ऊपर कर दी गई है, के पश्चात मुख्यतः गणेश चतुर्थी चाना छठ, गोगा नवमी एवं अनन्त चतुर्दशी के त्योहार आते है।

अन्य प्रदेशो में गणेश चतुर्थी मनाये जाने का स्वरूप कुछ भी हो परन्तु राजस्थान की परम्परा विशिष्टता लिए हुए है। गणेश चतुर्थी जो भाद्र शुक्ला चतुर्थी के दिन पड़ती है, के चार दिन पहले से ही बच्चों के बहरूपया जुलूस निकलते हैं। इन दिनों प्राथमिक शाला के विद्यार्थी अपने गुरुओं के साथ जुलूस के रूप में प्रत्येक विद्यार्थी के घर जाते हैं जहां से गुरुओं को गुरु दक्षिणा दी जाती है। इस रिवाज का आधार अज्ञात है। परन्तु इस पर्व पर बाल मण्डली—राम, लक्ष्मण, परशुराम आदि के रूप में विविध रूप धारण किये जुलूस के रूप में राहियों को आकर्षित किये बगैर नहीं रहती है। ये नारे भी लगाते जाते हैं। बच्चों द्वारा लगाये जाने वाले नारे होते हैं।

चौक चान्दनी भादूड़ा,
देवे भाई लाडूडो.
लाडूडे में घी घणों आदि आदि

घरों में जाकर राम लक्ष्मण परशुराम संवाद का नाटक बच्चों के द्वारा बड़े आकर्षक ढग से किया जाता है। बच्चे जब

अत्यधिक मनोहर और तुतली वाणों में जब बोलते हैं —

रे मूढ़ जनक ! जल्दी बतला इस धनुआ को

किसने तोड़ा है—

बड़े वूढ़ों, औरत मर्दों के लिए गणेश चतुर्थी के दिन उपवास रखना देव शक्ति के प्रति अपनी आस्था प्रकट करने के लिये होता है। राजस्थान में इस दिन चन्द्र दर्शन अशुभ माना जाता है। कहा जाता है कि इस दिन चन्द्र दर्शन करने से आने वाले वर्षों में दर्शक को झूठा कलक लगता है।

गोगानवमी—

सारे राजस्थान में गोगानवमी का विशेष महत्व है क्योंकि यह एक प्रान्तीय त्योहार है और वीर गोगा को स्मृति में मनाया जाता है। इस दिन प्रायः सभी जगह नागदेवता की पूजा की जाती है। यह त्योहार भाद्रपद कृष्ण नवमी को मनाया जाता है जिस के पहले दिन औरतें रात्रि जागरण कर गोगाजी के गीत गाती हैं। इन गीतों में इस सिद्ध व वीर पुरुष की प्रशंसा होती है। इस त्यौहार का रक्षा वन्धन से भी सम्बन्ध है क्योंकि रक्षा वन्धन के दिन बांधी गई राखी इसी दिन गोगाजी के सामने उतार कर रखदी जाती हैं।

कृष्ण जन्माष्टमी और अनन्त चतुर्दशी व्रतोत्सव हैं। इन दिनों स्त्री पुरुष उपवास रखते हैं कृष्णाष्टमी भाद्रपद कृष्णा अष्टमी को पड़ती है। श्री कृष्ण का जन्म भादों वदी अष्टमी को कंस के कारागार में अर्द्ध रात्रि में हुआ था। अतः उनका जन्म दिवस प्रत्येक घर में मनाया जाता है।

इस दिन लोग दिन भर उपवास करते हैं। दोपहर को फलाहार करते है। इस दिन लोग अन्न नमक आदि नहीं खाते हैं। चन्द्र दर्शन के पश्चात ही भोजन किया जाता है एवं उस दिन मंदिरों में आरती नहीं की जाती है।

अनन्त चतुर्दशी भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशी को होती है। ऐसी मान्यता है कि इस दिन व्रत करने से मनुष्य धनधान्य से परिपूर्ण रहता है और उसे किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता है। इस दिन एक ही अन्न का बना हुवा अलोना भोजन किया जाता है।

आश्विन मास का प्रथम श्राद्ध पखवाड़ा होता है। इस पखवाड़े में परिवार के प्रत्येक पूर्वज का उसकी मृत्यु तिथि के दिन श्राद्ध किया जाता है। श्राद्ध में बनी रसोई कौवा, कुत्ता, गाय, कीड़े मकोड़े आदि तथा अग्नि को देने के पश्चात भोजन किया जाता है। अगले पखवाड़े के प्रथम दस दिनों में दशहरा एवं नवरात्रि के पूर्व मनाये जाते हैं, नवरात्रि के दिन में काफी परिवारों के अधिकांश स्त्री पुरुप एक समय उपवास रखते हैं। इन दिनों दुर्गा पूजा की जाती है। जगह जगह रामलीला का प्रदर्शन किया जाता है। आश्विन शुक्ला दशमी को विजयादशमी का पर्व मनाया जाता है। यह पर्व मुख्यत: क्षत्रियों का है लेकिन इसे सभी लोग मानते हैं। इस दिन दुर्गा की पूजा के साथ अस्त्र शस्त्रों की भी पूजा की जाती है। इसी दिन राम ने रावण को मारने के लिये लंका पर चढ़ाई की या रावण का वध किया था। तथा इसी दिन दुर्गा ने महिषासुर को मारा था। इस प्रकार इसी दिन दानवता पर मानवता की विजय हुई तथा सबको स्वतंत्रता प्राप्त हुई थी। इस दिन शाम के समय रावण व उसके परिवार के सदस्यों

के पुतलों को जलाया जाता है। दोपहर में महिषासुर के प्रतीक स्वरूप भैंसा मारा जाता था अब प्रायः नहीं मारा जाता।

कार्तिक माह का मुख्य पर्व दीपावली राजस्थान में देश के अन्य भागों की तरह, बड़े उल्हास से मनाया जाता है। वस्तुतः यह त्योहार कृषि की गौरव गरिमा बढ़ाने वाला हमारा राष्ट्रीय त्योहार है। वेद मंत्र 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' का प्रतीक दीपावली है। आर्य समाजी यह दिन स्वामी दयानन्द सरस्वती का महा निर्वाण दिवस के रूप में मनाते हैं। इसी दिन स्वामी दयानन्द का अजमेर में देहान्त हुआ था। श्री दयानन्द ने सती प्रथा, बाल विवाह, वैधव्य, छूआछूत, बालहत्या, संकीर्ण जाति प्रथा, समुद्र यात्रा निषेध, पर्दा आदि अनेक कुरीतियों के विरुद्ध प्रबल जन आन्दोलन चलाया था। कार्तिक माह की अमावस्या के दिन यह त्यौहार आता है जिसकी तैयारी पहले पखवाड़े में ही शुरू हो जाती हैं। मकानों को साफ सुथरा कर सजावट की जाती है। पहले दिन केवल सात दीप जलाये जाते हैं जो घर के मुख्य द्वारों पर रखे जाते हैं। दूसरे दिन (अमावस्या) स्थान स्थान पर रोशनी की जाती है। दीपों की कतारें, ग्रामों, कस्बों, व शहरों को प्रकाशित करती हैं। दीपावली की रात्रि में लक्ष्मी पूजन किया जाता है। औरतें दीप पूजन गीत गाकर करती हैं—

सोने के म्हें दिवलो घड़ास्या-
रेशम बार बटास्यां जी,
घरबार को चौमुख दीवो,
घी सूं म्हें पुरवास्यां जी आदि आदि।

स्तुति गीतों से वातावरण उल्लासमय हो जाता है। प्रायः मुँह अंधेरे ही उठ कर रात्रि में जलाये दीपों को पुनः संजोया

जाता है तथा घर के मुख्यद्वार के आगे गोवर्द्धन पूजन किया जाता है।

दीपावलि के दूसरे दिन "राम रामी" का पर्व मनाया जाता है। इस दिन सभी अपने अपने परिचितों से मिलते हैं। बड़े बूढ़े छोटों को आशीर्वाद देते हैं। छोटे बड़ों का चरण स्पर्श करते हैं एवं साथी हाथ जोड़ कर आपस में अभिवादन करते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि कृषि महिनों से आई व्यस्तता के कारण पैदा हुआ वातावरण दीपावली का अगला "राम रामी" दिन एक नवीन रूप - मेल जोल, शांति व आपसी सौहार्द के रूप में परिणत कर देता है।

दीपावली के तीसरे दिन भैया दूज और दवात पूजन आदि त्यौहार मनाए जाते है। दीपावली की रात्रि को "हीड" देने की प्रथा राजस्थान में कई स्थानों पर प्रचलित है। गाय पालक ग्वालों के लिए भी दीपावली विशेष महत्व का त्यौहार है। वे लोग गौ पूजन करते हैं। गायों के गले में घंटियां बांधते हैं और 'हीड" का विशेष गीत गाते हैं।

इसी माह की शुक्ला पक्ष को अष्ठमी को गोपाष्टमी पर्व के दिन गायों की स्त्री पुरुष पूजा करते हैं। गाय, बैल व सांड को गुड़ व मिठाई खिलाई जाती है एव मेले भरते हैं। आगे आने वाली एकादशी को देवोत्थान एकादशी के रूप में माना जाता है अर्थात गत चार माहों से आराम कर रहे देव इस एकादशी को पुनः जागते हैं। इसके पीछे यह भावना रही है कि कृषि अवधि में समाज में किसी प्रकार के पर्वादि मनाने की फुरसत नहीं रहती है। अतः अन्य कार्यों के लिए ऐसी अवधि में शुभ मुहूर्त नहीं होता है। देवोत्थान एकादशी के पश्चात (हरिशयनी) एकादशी तक जो ठीक आठ माह बाद अषाढ़

शुक्ला एकादशी को आती है के मध्य दिनों में ही विवाह व अन्य उत्सव पर्व मनाये जाने शुभ माने गये हैं। कार्तिक माह में पौ फटने से पहले स्नान करने का बहुत महत्व माना जाता है। इसको दृष्टिगत रखते हुए ही अधिकांश राजस्थानी औरतें इस माह में पौ फटने से पहले स्नान करती है। नववधुएं कार्तिक मास में तारा भोजन करती हैं। अर्थात् दिन भर उपवास रखा जाकर सायकाल तारों के दर्शनोपरान्त भोजन किया जाता है।

मार्गशीर्ष मास में आने वाले प्रमुख पर्वों में गीता जयन्ती मुख्य है। इस दिन श्रीमद्भगवत् गीता का पूजन घर घर में किया जाता है।

मकर संक्रान्ति के एक माह पूर्व मल लगते हैं। इन दिनों में कोई नया कार्य किया जाना शुभ नहीं माना जाता है। इसके पन्द्रह दिन उपरान्त घरों में बड़ा व पकौड़ी तैल में बनाई जाकर चीलों व कौओं को खिलाई जाती हैं। तद्पश्चात ही नये कार्य सम्पन्न किये जाते हैं। पौष या माघ मास में ही १८ जनवरी को मकर संक्रान्ति का पर्व मनाया जाता है। उस रोज पहले सफेद तिल व काले तिल को गुड़ में मिला कर लड्डू बनाकर खाये जाते हैं। इस दिन दान पुण्य भी किया जाता है।

माघ शुक्ला पंचमी को बसन्त महोत्सव मनाया जाता है। इस दिन लोग पीले रंग से रंगे कपड़े पहनते हैं तथा सरस्वती की पूजा की जाती है। किसान इस दिन अपने हल की पूजा करता है और नये वर्ष की खेती का अभियान करता है। होली का त्योहार स्वागतोत्सव के ढंग एवं चगों के साथ विभिन्न संगीत लहरी के संयोग से मनाया जाता है। पाठशालाओं में

एवं सांस्कृतिक केन्द्रों पर सरस्वती पूजन किया जाता है। इस दिन से होली तक ढफों एवं चगों पर गायन किये जाते हैं। जिनमें विभिन्न भावों का संम्मिश्रण होता है।

इसी मास में शिवरात्रि पर्व व माही चौथ व्रतोत्सव भी मनाये जाते हैं। यह व्रत फाल्गुन कृष्णा तेरस व कहीं कहीं चौदस को मनाया जाता है इस व्रत में रात भर जागरण भी किया जाता है। इस दिन महादेव ने समुद्र मंथन से प्राप्त विष का पान लोककल्याण के लिए किया था। विषपान से महादेव का कठ काला हो गया और तब से वह नीलकण्ठ कहलाने लगे। शिवरात्री के दिन अधिकतर स्त्री पुरुष व्रत रखते हैं एवं शिव पूजा करते हैं जबकि माही चौथ को औरतों में ही व्रत उपवास का प्रचलन है।

फाल्गुन माह में होली पर्व का अत्यधिक महत्व है। होली का पर्व उस समय आता है जब किसानों की फसल खलियान में आ जाती है या खेतों में पक जाती है। इस प्रकार अपने श्रम को सफल होते देखकर किसान प्रसन्न हो नाच उठता है। यह पर्व एक राष्ट्रीय पर्व है जो सभी छोटे बड़े स्त्री पुरुष, धनी, गरीब, बिना किसी भेदभाव के मनाते हैं। ब्राह्मण और चमार, विद्वान व मूर्ख के भेदभावों को भूल जाते हैं। वसन्त पंचमी से ही स्त्री पुरुष होली के गीत गाने लगते हैं। रात्रि में चग और ढाल की मधुर आवाज से वातावरण गूंज उठता है। सामूहिक नृत्यों का आयोजन होता है। होली के एक सप्ताह पहले से ही रात्रि में विशेष नृत्य का आयोजन होता है जिसे "गोन्दड़ नृत्य" कहते हैं। होली के कुछ नृत्य गीत हैं। स्त्रियों द्वारा गाया जाने वाला एक प्रसिद्ध गीत है—

रंगीलो चग वाजरा,

म्हारे वीरंजी मंढायो चंग,
म्हारो रेगर मंढ के लायो ए।
चंग आगलियां बाजे,
चंग मूंदड़िया वाजै,
चंग पूंच के बल बाजे ए,
चंग रंगीलो चंग बाजणूं।

होली के अवसर पर गाया जाने वाला एक स्त्री नृत्यगीत 'घूमर नृत्य" लूवर कहलाता है—

ओजी ओ, मने पाणीड़ो पोमचियो रंगा दे, मोरी माय,
लूंवर रमवा मैं जास्यूं।
ओजी ओ, मने रामड़ा रो टेवटियो घड़ादे मेरी माय,
घूमर रमबा मैं जास्यूं।
ओजी ओ, मने घूमतीन लाडूड़ा दीजे, मोरी माय,
लूवर रमबा मैं जास्यूं।
ओजी ओ मने, राठोड़ा री बोली प्यारी लागे मेरी माय.
घूमर रमबा मैं जास्यूं।

गुलाल व रंगीन पानी से तरबतर स्त्री-पुरुष-बालक सब में इस त्योंहार के अवसर पर आनन्द की लहर् दौड़ जाती है। गीदड़ नृत्य में मनुष्य तरह तरह के भेष बनाकर शृंगार-कर सम्मिलित रूप से हाथों में छोटी छोटी लकड़ियां लेकर नृत्य करते हैं। नृत्य करने में वे ढोल व ढोलक की ताल पर कदम उठाते है और एक गोलाकार चक्कर में घूमते हुए ताल पर आनन्द लेते है। नृत्य करने वाले मनुष्यों के पेरा में घुंघरू भी बन्धे होते हैं।

होली के दिन (फाल्गुन शुक्ला १५) होलिका दहन किया जाता है एवं प्रहलाद भक्त की जय बोली जाती है। दूसरे दिन दोपहर तक रंग गुलाल खेले जाते हैं। सभी स्त्री पुरुष आनन्द मग्न होकर एक दूसरे पर रंग डालते हैं एवं गुलाल लगाते हैं। बाद दोपहर सभी स्नान करके नवीन वस्त्रादि धारण कर "राम रामी" जैसे दीपावलि के दूसरे दिन होता है, मनाया जाता है।

उसी दिन से गणगौर पर्व की तैयारियां शुरू हो जाती है। बड़े सवेरे स्त्रियां एवं बालिकायें गणगौर के गीत गाने शुरू कर देती हैं। गणगौर का त्यौहार विशेष महत्व का माना गया है जो शिव पार्वती के गौने का प्रतीक है।

प्रतिदिन शाम के समय सौभाग्यवती स्त्रिया तथा कुंवारियां वस्त्राभूषण से सुसज्जित होकर सिर पर कलश रखकर इस अवसर पर गीत गाती हुई बगीचों में जाती हैं और वहां से जल का कलस भर कर उसे पुष्पों से सजाते हुये उसी प्रकार गीत गाती हुई वापस आ जाती हैं। घूमर नृत्य व मधुर संगीत इस त्यौहार की विशेषतायें हैं। राजस्थान की बालुकामयी धरती इन गीतों की स्वर लहरियों से मुखरित हो उठती है। इस अवसर पर गाये जाने वाले विशिष्ट गीतों की मधुरता का कोई समानता नहीं रखता है। नव-वधु की अपने पति से आग्रह पूर्ण स्वरों में निम्न गीतों भरी विनती अपने ढग का एक अनुपम उदाहरण है।

खेलणदो गणगौर भंवर म्हाने पूजण दो गणगौर
म्हाने रमण दो गणगौर।
म्हारी सहेलियां जोवे बाट विलाला
म्हाने खेलण दो गणगौर।

पति अपनी प्रिय पत्नि की इस आग्रह भरी, विनती को टाल नहीं सकता है—

भल खेलो गणगौर सुन्दर गोरी,
भल पूजों ये गणगौर।
हो जी थान देवे लाडला पूत,
प्यारी भल खेलो ये गणगौर॥

कुमारी कन्यायें भी गीत गानें में पीछे नहीं रहती हैं। कुमारियां पारवती की वदना कर सुन्दर तथा आदर्श वर की कामना करती हैं—

हरिये गौबर गोली दिरावो,
मोत्या चौक पिरावोजी।
मोत्यां का दो अखवा ल्यावो
निरखी गौर पुजावोजी॥
गौर ये गणगौर माता खोल किवांड़ी,
बाहए रोवे पूजन हारी।

घरों में ईसर और गणगौर की काष्ट की मूर्तियां सजाई जाती है और चैत सुदी तीज को इन मूर्तियों का जुलुस निकाला जाता है, जिसमें हजारों नरनारी भाग लेते हैं। उदयपुर और जयपुर के गणगौर की सवारी दर्शनीय होती है। उदयपुर में तालाव के बीच नृत्य व गायन के आयोजन बड़े ही सुन्दर लगते हैं। जयपुर का गुलाबी राज-मार्ग उस दिन तो और ही ज्यादा खिल उठता है। विवाहित स्त्रियों का तो गणगौर सबसे प्रिय त्योहार है।

चैत्र माह में ही मनाये जाने वाला शीतलाष्टमी के त्योहार का बड़ा धार्मिक महत्व माना जाता है। यह त्योहार चैत्र

कृष्णा अष्टमी को मनाया जाता है। इस दिन शीतला देवी का पूजन होती है। इस दिन एक दिन पहले का बनाया हुआ भोजन अर्थात बासी भोजन स्त्रियां बगीचों में जाकर खाती है। ऐसी मान्यता है कि शीतला पूजन से चेचक नहीं निकलती है।

मारवाड़ में शीतला अष्टमी के दिन घुड़ले का त्यौहार भी मनाया जाता है। इस दिन स्त्रियां एकत्रित होकर कुम्हार के घर जाकर अनेकों छोटे छोटे छिद्र किये हुए एक घड़े में दीपक रख कर अपने घर गाती हुई लौटती हैं।

इस दिन का एक प्रसिद्ध लोक गीत है—

घूड़लो घूमेला जी घूमेला,
घूड़लो रे बांधों सूत,
घूड़लो घूमेला सवागण बाहरे आया
प्रताप जी रे जायो पूत, घूड़लो घूमेलाजी घूमेला,
तेल बले घो लाव घूड़लो घूमेलाजी घूमेला,
मतियारा आखा लाव, घूड़लो घूमेलाजी घूमेला।

यह घड़ा बाद में किसी तालाब में बहा दिया जाता है। यह मेला चैत्र शुक्ला तक भरता है। यह मेला एक ऐतिहासिक घटना की याद में भरता है। वि, सं० १५४८ (ई० सन् १४९१) में जोधपुर जिले के गांव कोसाणा (तहसील बीलाड़ा) की १४० क्षत्रिय बालाओं को अजमेर का तत्कालीन सूबेदार मल्लूखां ले भागा था। ये लड़कियां उस वक्त गांव के बाहर तालाब पर गौरी पूजन के लिये गई हुई थी। जोधपुर नरेश सातल को जब यह पता लगा तो उसने मल्लूखां का पीछा किया और मल्लूखां को तीरों से छेद डाला। पठानों को हरा कर सातल घूडलेखां का सिर तथा उसकी पुत्री तथा अन्य पठान कन्याओं को ले आया। घूडलेखां का तीरों से छिदा सिर

गांव में घुमाया गया। उसी घटना की याद में अब यह मेला भरता है।

चैत्र शुक्ला नवमी का रामनवमी का पर्व मनाया जाता है। राम का जन्म इसी दिन हुआ था।

वैशाख माह की शुक्ल पक्ष की तृतीया को अक्षयतृतिया (आखा तीज) का त्यौहार मनाया जाता है। इस दिन सब घरों में सात धान चावल, गेहूं, बाजरा, ज्वार, मक्की, मूग व मोठ की खीचड़ी पकाकर खाई जाती है। साथ में इमली का रस व गुढ़ की गण्वानी बनाई जाती है। इस अवसर पर पानी में घोल कर अफीम आने वाले मेहमानों को पिलाई जाती है। इस दिन को लोग सत्युग का प्रारम्भ मानते हैं।

आगामी वर्ष के शकुन इसी दिन लिये जाते है। स्त्रियां मंगलाचार के गीत गाती हैं। राजस्थान में ज्यादातर विवाह इसी दिन होते हैं। बरातों की धम रहती है। कंवारे छोटे छोटे बच्चे दुल्हा और दुलहिन के स्वांग रच कर गीत गाते फिरते हैं—

कोरो तो कुलड़ी राज
दही ए जमायो।
सासु रो जायो राज,
इमरत बोले,
बोले बोले मारे ससुराजी री पोल
केसरियो राज इमरत बोले।

ज्येष्ठ मास में निर्जला एकादशी का पर्व शुक्ल पक्ष में मनाया जाता है। इस दिन उपवास के साथ साथ जल भी नहीं पिया जाता है।

अषाढ़ पक्ष में शुक्ल पक्ष की द्वितीया को रथ पर्व मनाया जाता है। इसदिन सामूहिक रुप से भगवान जगदीश की रथ यात्रा निकाली जाती है एवं उनकी पूजा की जाती है।

राजस्थान में पर्व व त्यौहारों की अधिकता से पता चलता है कि पुराणों में वर्णित घटनाएं अब भी इन सांस्कृतिक ढांचों में जिन्दा मिलती हैं। त्यौहारों और पर्वों में व्रत और उपवास की अधिकता के साथ २ यहां के जीवन में रसिकता का भी पूर्ण समावेश हुवा है। दीपावली, होली आदि मुख्य त्यौहारों के अतिरिक्त तीज और गनगौर आदि त्यौहारों के मनाये जाने के परम्परागत तरीके इस तथ्य पर पूर्ण प्रकाश डालते हैं। अनेकानेक ऐतिहासिक परिवर्तनों के उपरान्त भी यहां की सांस्कृतिक परम्परायें और जन जीवन की झांकियां रंगीले कहे जाने वाले राजस्थान की रंगीनियों के ऐसे चित्र अंकित करती हैं जो अमिट छाप छोड़े विना नहीं रहती है।

सामान्य जीवन

दैनिक जीवन—

अब हम राजस्थानी समाज के सामान्य दैनिक जीवन पर मुख्यत: एक गृहस्थ के दैनिक जीवन पर प्रकाश डालेंगे। गृहस्थ के दैनिक जीवन पर शास्त्रीय एवं पौराणिक परम्पराओं का अत्यधिक प्रभाव पड़ा है। पौराणिक परम्पराओं के अनुसार दैनिक जीवन के प्रमुख कर्त्तव्य थे—प्रातःकाल शैया से उठना, शौच, दत धावन, स्नान, संध्या, देवपूजा, गुरु-पूजा, धर्मग्रंथों का अध्ययन, तर्पण अतिथि सत्कार, अग्निपूजा, भोजन, धन अर्जन, पढ़ना, पढ़ाना, सयम, दान और शयन ये सभी दैनिक विषय किसी न किसी रूप में कतिपय परिवर्तन के साथ राजस्थानी समाज में पाये जाते हैं।

कूर्म पुराण के अनुसार सूर्योदय से कुछ पहले उठकर भगवान का स्मरण करना चाहिये। आज भी बहुधा प्रातःकाल उठते ही इष्टदेव का स्मरण करते हैं। पश्चात् मल मूत्र त्याग करने का कृत्य किया जाता है। प्राचीन सूत्रों एवं स्मृतियों में भी जागने के पश्चात् मल मूत्र त्याग के सम्बन्ध में बड़ा लम्बा चौड़ा प्रसग मिलता है। उनमें बहुत से नियम जो स्वच्छता व स्वास्थ्य सम्बन्धी हैं, आज भी राजस्थानी समाज में मिलते हैं। शहरों में इस कार्य हेतु घरों में अलग अलग अथवा सामूहिक पाखानों की व्यवस्था है। देहाती क्षेत्रों में यह क्रिया खुले एव एकान्त स्थान में की जाती है। पुराणों के अनुसार मार्ग राख, गोवर, जोते एवं बोये हुए खेतों, वृक्ष की छाया, नदी या

जल के पास घास, या सुन्दर स्थल, वेदी के लिए बनी ईंटें, पर्वत शिखर, जीर्ण खण्डित देवस्थल या गोशालायें, कीड़ी नगरा (चींटियों के स्थल), कब्र, श्मशान या छिद्र तथा अन्न फटकारने के स्थल (खला), और बालुका मय तटों में मल मूत्र त्याग नहीं करना चाहिये। मल-मूत्र त्याग करने के लिए स्थिति का विवरण भी हमें मिलता है। जैसे-अग्नि, सूर्य, चन्द्र, जल, गाय और वायु की तरफ मुख करके मल-मूत्र त्याग नहीं करना चाहिये। दिन में या गोधूली के समय सिर ढ़क कर उत्तराभिमुख होकर मल-मूत्र त्याग करना चाहिये। परन्तु जब भय हो या कोई आपत्ति हो तो किसी भी दिशा में ये कृत्य सम्पादित हो सकते हैं। खड़े होकर या चलते हुये मत्र त्याग नहीं करना चाहिये और न बोलना चाहिये। पुराणों में ये सब प्रतिबन्ध गृहस्थ पर ही लागू थे। इन प्रतिबन्धों का राजस्थानी समाज में बहुत हद तक पालन किया जाता है। शौच आदि से विवृत होने के पश्चात् मिट्टी या साबुन से हाथ धोये जाते हैं। मनु और याज्ञवल्क्य की स्मृति के अनुसार मल-मूत्र त्याग के उपरान्त अंगों को पानी से एव मिट्टी से इतना स्वच्छ कर देना चाहिये कि गन्ध या गन्दगी न रहे। इसमें प्रतिबन्ध यह है कि अंग स्वच्छ करने में पत्थर, वस्त्र, पेड़ की टहनी, कूड़े या कीड़ों से भरी मिट्टी प्रयोग में नहीं लानी चाहिये। शहरों में मिट्टी की जगह साबुन का ज्यादा प्रयोग किया जाता है। हाथ एवं अंगों को साफ करने के पश्चात् मुंह को बारह कुल्लों से स्वच्छ करने का प्रावधान स्मृतियों में है परन्तु बारह से तो नहीं एक से लेकर चार कुल्लों तक प्रायः व्यक्ति करते ही हैं।

शोच तथा आचमन के उपरान्त एवं स्नान से पूर्व दन्त

धावन का रिवाज है। दन्त धावन में प्रायः नीम, बबूल अथवा बांसे, कीकर आदि की दतौन या दन्त मंजन अथवा टूथ पेस्ट इस्तेमाल करते हैं। वैसे शास्त्रों में दन्तधावन क्रिया के लिये काफी व्यवस्था भी है। उदाहरणतः रजस्वला स्त्रियों को दन्तधावन नहीं करना चाहिये अन्यथा उत्पन्न होने वाले पुत्र के दान्त काले हो जावेंगे। परन्तु इस प्रकार के प्रतिबन्धों की मान्यता अति अल्प मात्रा में मिलती है। दन्त धावन क्रिया के साथ जिह्वा को भी रगड़कर स्वच्छ करने की प्रथा है।

स्नान की परिपाटी समस्त प्रदेशों की तरह ही राजस्थान में भी है। पौराणिक परम्पराओं के अनुसार स्नान के लिए दी गई व्यवस्थाओं का पालन बहुत कम होता है तथापि विशिष्ट अवसरों पर विशेष स्थानों की व्यवस्थाओं का पालन किया जाता है। जैसे विवाह संस्कार के अवसर पर या पानीवाड़ा में। सर्दियों में प्रायः एक बार और गर्मियों में प्रायः दो बार स्नान किया जाता है। स्नान के वक्त ज्यादातर लोग अपने इष्ट देव का स्मरण करते हैं। साधारण प्रकार के स्नान के अलावा स्मृतियों में और भी कई प्रकार के स्नानों का वर्णन है। उनका विवरण निम्न प्रकार से है–

(क) नैमित्तिक स्नान—किन्हीं विशिष्ट अवसरों पर या कुछ विशिष्ट व्यक्तियों या पदार्थों से स्पर्श हो जाने पर जो स्नान किया जाता है उसे नैमित्तिक स्नान कहते हैं।

(ख) काम्य स्नान—किसी तीर्थ को जाते समय या पुष्य-नक्षत्र में चन्द्रोदय पर जो स्नान होता है, तथा इसी प्रकार के जो स्नान किसी इच्छा की पूर्ति के लिये किये जाते हैं उन्हें काम्य स्नान कहते हैं।

(ग) क्रियांग स्नान—कूप, मन्दिर, वाटिका तथा जन-ल्याण कार्य के समय जो स्नान होता है उसे क्रियांग स्नान कहते हैं।

(घ) अभ्यंग स्नान—जब शरीर में तैल एवं आवला लगाकर केवल शरीर को स्वच्छ करने की इच्छा से स्नान होता है उसे अभ्यंग स्नान कहते हैं।

(ङ) कापिल स्नान—जब रोगी व्यक्ति को गर्म जल में भीगे तोलिये से उसके सिर को छोड़कर शरीर को पौंछ देते हैं उसे कापिल स्नान कहते हैं।

और भी कई प्रकार के स्नानों का वर्णन मिलता है यथा मंत्र स्नान, भौम स्नान, आग्नेय स्नान, वायव्य स्नान, दिव्य स्नान, मानस स्थान, ब्रह्म स्नान, सारस्वत स्नान आदि। परन्तु ये सब गौण हैं और स्थानाभाव के कारण इनका विस्तृत विवरण यहां दिया जाना कठिन है।

वेशभूषा—

राजस्थान में पुरुषों का मुख्य पहनावा अंगरखा (बुगतरी) तथा घुटने तक बंधी धोती है। सर्दियों में वे घुघवी या पचेवड़ा का प्रयोग करते हैं। सिर पर पगड़ी या साफा जाति व क्षेत्र भेद के अनुसार भिन्न भिन्न रीति से बांधा जाता है। उनके पेच व बांधने के ढंग को देखकर पता लगाया जा सकता है कि वह किस जाति या किस क्षेत्र का है। उदयपुरी पगड़ी व जोधपुरी साफा सर्वत्र प्रसिद्ध है। नगरों में लोग कोट, पेण्ट, कमीज, पायजामा, बुश्शर्ट व नेकर पहनते हैं। अब तो प्रायः गांवों में भी ये ही पहने जाते हैं। कुछ लोग नंगा सिर रखते हैं। यों टोपी व हेट का भी प्रचलन है। शहरों के मुसलमान

चूड़ीदार पायजामा या ढीला पायजामा और अचकन भी पहनते हैं। जोधपुरी कोट व ब्रीचीज सर्वत्र प्रसिद्ध हैं।

राजस्थान में स्त्रियों के वेषभूषा बहुत ही रंगीन और कलामय होती है। सामान्य हिन्दू नारियां लेंहगा या घाघरा ओढ़ना या लूगड़ी, कांचली व अंगरखी पहनती हैं। ये विभिन्न रंगों की व छपी होती हैं। इनको गोटा किनारी लगाकर सजाया जाता है। ओढ़नी को चून्दड़ी, पीला, पोमचा, वसन्ती लहरिया. आदि उसके रगों व बंधेज व छपाई के अनुसार कहा जाता है। मुस्लिम स्त्रियां चूड़ीदार पायजामा पहनती हैं और उसके ऊपर तिलक नामका एक चोगा सा पहनती है और इन सब पर ओढ़नी है। अब तो स्त्रियों में साड़ी व ब्लाउज तथा लड़कियों में सलवार व कमीज का भी काफी रिवाज हो गया है। नगरों में इनका अत्यधिक प्रचलन है।

राजस्थान में स्त्री व पुरुष दोनों ही आभूषणों को धारण करते हैं। नगरों में पुरुष प्रायः आभूषण धारण नहीं करते हैं लेकिन गले में सोने की सांकल, हाथ की अंगुली में अंगूठी व बच्चों के कानों में लोंग या मुरकी का काफी प्रचलन है। ग्रामीण लोग कानों में लोंग या मुरकी हाथ और पैर में कड़े गले में कण्ठी या सांकल या तावीज और बाँहों में बाजूबन्द पहनते हैं। स्त्रियों के गहनों के बारे में अलग से काफी लिखा जा रहा है। यहां की स्त्रियां सोने व चांदी, दोनों के ही गहने पहनती हैं। हाथी दांत, पीतल व राग की चूड़ियां भी काफी पहनी जाती हैं। कई जातियों में चूड़ियों से पूरी बांह ढक जाती है।

भोजन

राजस्थान में विभिन्न वर्गों के लोग रहते हैं! अतः अलग

अलग वर्ग अपने मतानुसार खाद्य पदार्थों का इस्तेमाल करते है परन्तु भोजन के समय एवं तत्ससम्बन्धी आचार व्यवहार सभी वर्गों में प्राय एक से हो हैं। सामुहिक भोज में लोग पंक्तिवद्ध बठते हैं। एव सामने रखी थाली या पत्तल से अपने दाहिने हाथ से भोजन करते हैं। इस व्यवस्था के मूल में प्राचीन ग्रन्थों के निर्देश हैं। शास्त्रानुसार भोजन पंक्ति में प्रथम स्थान सम्माननीय व्यक्ति को प्राप्त होता है। जब तक सभी व्यक्ति भोजन न करलें, तब तक कोई व्यक्ति उठता नहीं है।

भोजनोपरान्त ताम्बूल (सुपारी) अथवा उपलब्ध होने पर पान खाने को उत्तम माना जाता है। कोई कोई लोंग अथवा इलायची का इस्तेमाल भी करते हैं।

भोजन के समय एवं संख्या के सम्बन्ध में कोई निश्चित व्यवस्था नहीं है फिर भी कम से कम दो बार (सुबह एवं शाम) तो किया ही जाता है तथा उसके अतिरिक्त काफी लोग प्रातः नाश्ता एवं दोपहर को भी कुछ आहार लेते हैं।

भोजन विधि पर शास्त्रीय नियमों का प्रभाव काफी है। जिसका कारण है श्रुतियों के उन नियमों के पालन न करने के कारण होने वाले नुकसानों का भय। यद्यपि उन नियमों का पालन अब तक किसी न किसी रूप में संशोधित हो चुका है परन्तु ब्राह्मण की मृत्यु (ब्राह्मणत्व का नष्ट होना) के चार कारण बताये हैं (१) वेदाध्ययन का अभाव (२) कर्मत्याग (३) घमंड और (४) भोजन दोष। विभिन्न धर्मसूत्र यथा आस्तम्ब, वाशिष्ठ, विष्णु धर्म आदि के अनुसार खाते समय मुख पूर्व दिशा की तरफ करना उत्तम बताया गया है। ब्रह्म-पुराण के अनुसार अपने छोटे भाइयों, पुत्रों आदि के साथ

भोजन किया जा सकता है। राजस्थान में महिलाएं अधिकांशत: किसी के सामने भोजन करने में शर्म करती हैं। कुछ लोग भोजन करते वक्त बोलते भी नहीं है।

राजस्थान में मांसाहारी एवं शाकाहारी सभी प्रकार के भोजन करने वाले रहते हैं अत; यह उनकी रुचि पर ही निर्भर करता है कि क्या खाए जाने के योग्य है अथवा क्या अयोग्य है?

सामान्यत: मुस्लिम, इसाई व सिक्ख अनुयायी तथा हिन्दुओं में राजपूत, कायस्थ, गूजर व अनुसूचित जातियां मांस खाती हैं। निरामिष भोजियों में जैन, ब्राह्मण तथा वैश्य हैं।

अंतर्जातीय भोजन अभी तक कम ही होते हैं। एक जाति के लोग दूसरी जाति के लोगों के हाथ का खाना कम ही खाते हैं। ब्राह्मणों व अनुसूचित जातियों में यह भेदभाव ज्यादा है। भंगियों के हाथ का खाना कोई जाति नहीं खाती। लेकिन भंगी भी ढोली, चमार, बलाई, कंजर, भोगिया, सांसी, नट कालबेलियां, मेहर आदि जातियों के हाथ का खाना नहीं खाते हैं। सामान्यत: गाय, बिल्ली, कुत्ते, मोर, तोता आदि का मांस नहीं खाया जाता है। मुसलमान व चमार जंगली सूअर का मांस नहीं खाते। मुसलमान झटके का मांस नहीं खाते हैं। यदि कोई व्यक्ति निषिद्ध मांस खा लेता है तो उसको जातियां पंचायत दण्ड देती हैं। यह दण्ड पांचसौ रुपये तक का जुर्माना हो सकता है।

ब्राह्मण लोग दूसरी जाति के हाथों से केवल पक्का खाना खाते हैं। पक्के खाने में साग, पूड़ी, मिठाई, नुकती या लड्डू खीर या हलवा होते हैं। उनके अनुसार कच्चे खाने में दाल, रोटी, दाल बाटी, या चावल चीनी होती है।

गेहूँ, बाजरी, जवार तथा मक्की यहां बहुतायत से खाई जाती है। गेहूं का प्रचलन नगरों में ज्यादा है। बाजरा राजस्थान के पश्चिमी भाग में. मक्की, जौ, चना; जवार राजस्थान के पूर्वी भाग में ज्यादा खाया जाता है। बाजरे का सोगरा, राब और खीच तथा मक्की का घाट बनाया जाकर खाया जाता है। दालों में मूंग मोठ व उड़द का ज्यादा प्रचलन है। हरी सब्जी नगरों में व पूर्वी भाग में ज्यादा काम में लाई जाती है। अन्य भागों में सांगरी, फोग, कैर, कुमठियां का साग सब्जी में प्रयोग किया जाता है।

राजस्थान में घी व लाल मिर्च का भोजन में ज्यादा प्रयोग होता है। यहां के विशेष व स्वादिष्ट भोजनों में बाफला, बाटी चूरमा और दाल हैं। दावतों में सीरा (हलुआ) और गेहूं की लपसी (गुड़ का मोटा दलिया) का ज्यादा चलन है। मिठाइयों में जोधपुर की मावे की कचौरी, बीकानेर के रसगुल्ले, जयपुर का कलाकन्द और अलवर का मावा अत्यन्त प्रसिद्ध है।

राजस्थान में शराब और अफीम का बहुत प्रचार है। अफीम का प्रचार कम हो रहा है लेकिन शराब का प्रचलन ज्यादा होता जा रहा है। उत्सवों व खुशी के दिनों में शराब का प्रयोग सामान्य रूप से होने लगा है। ब्राह्मणों व वैश्यों में भंग ज्यादा पी जाती है।

अतिथि सत्कार–

अतिथि सत्कार या स्वागत सम्मान एक यज्ञ के बराबर माना जाता है। यह अति प्राचीन परम्परा है। ऋग्वेद में बताया गया है "तुम उसके रक्षक बनो जो तुम्हें विधिवत् आतिथ्य देता है।" याज्ञवल्क्य ने लिखा है कि वही व्यक्ति

अतिथि है जो दूसरे ग्राम का है, एक ही रात्रि रहने के लिये संध्याकाल में पहुंचता है। वह जो खाने के लिए पहले से ही आमन्त्रित हो अतिथि नहीं कहलाता है।

मूल रूप में अतिथि सत्कार के पीछे एक मात्र प्रेरक शक्ति सार्वभौम दया एवं मनुष्य के प्रति वात्सल्य भावना थी। किन्तु इस भावना को महत्ता देने के लिये स्मृतियों ने अन्य प्रेरक भी जोड़ दिये हैं। अर्थात् इसे कर्तव्य के रूप में ठोस मान्यता प्रदान की गई है। शांखायन गृह्यसूत्र ने तो यहां तक कह दिया है कि खेत में गिरा हुआ अन्न इकट्ठा करके जीविका चलाने वाले एवं अग्निहोत्र करने वाले गृहस्थ के घर में यदि बिना बुलाये अचानक आया हुआ व्यक्ति बिना अतिथि सत्कार पाये रह जाता है तो वह गृहस्थ के सारे पुण्यों को प्राप्त कर लेता है अर्थात् हर लेता है। इस प्रकार से धर्म सूत्रों द्वारा बांधे गये अतिथि सत्कार के नियमों ने एक प्रकार की पारस्परिक प्रेम परम्परा को कायम कर रखा है।

आज भी समाज में अतिथि सत्कार की बड़ी महिमा मानी जाती है। गृहस्वामी कर्जदार होते हुए भी आतिथ्य परम्परा शान से निबाहने की चेष्टा करता है। रोजमर्रा के भोजन में वह सस्ती वस्तुओं का ही इस्तेमाल करता है परन्तु अतिथि को कराये जाने वाले भोजन की सामग्री उत्तम से उत्तम रखने की चेष्टा करेगा। इसी प्रकार ओढ़ने बिछाने के वस्त्रों में भी वह इस परम्परा को निबाहता है।

दान-पुण्य—

मनु के अनुसार मानव के लिए निश्चित कर्म हैं-गुरु पूजा,

संयम, तप, धर्मशास्त्रों का ज्ञान, यज्ञ एवं दान। किसी दूसरे को, अपनी वस्तु का अपनी इच्छा से स्वामी बना देना दान देना कहलाता है। बड़े दान विधि के अनुसार भी किये जाते हैं तथापि छोटे दानों में विधि का पालन करना अनिवार्य नहीं समझा जाता है। दान को यहां आवश्यक कर्म के रूप में स्वीकार किया गया है।

वेदों ने भी स्थान स्थान पर दान की प्रशंसा में बहुत कुछ कहा है तथापि उसका रिवाज अन्य स्थानों की अपेक्षा राजस्थान में अत्यधिक प्रचलित है। बच्चे के जन्म लेने से मरने तक हर त्यौहार, व्रत और पर्व में दान की परम्परा का समावेश है। हर व्यक्ति अपनी हैसियत के अनुसार उचित व्यक्ति को दान करता है।

विवाह के अवसर पर कन्यादान होता है। मृत्यु समय गोदान किया जाता है। जन्मोत्सव पर पंडित व ज्योतिषी को धन व सोने का दान किया जाता है। पर्वों पर ब्राह्मण दीन, गरीब, अपंग एवं ज्योतिषियों को धन व स्वर्ण वस्त्रादि दान किये जाते हैं। दैनिक व्यवहारों में बेटी-बहिन-बुआ आदि को कुछ न कुछ देना अच्छा माना जाता है। दान के काल (समय) के सम्बन्ध में स्मृतियों में भी वर्णन मिलते हैं। याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार विशिष्ट अवसरों पर दान ज्यादा फलदायक होते हैं। ये अवसर विभिन्न ग्रन्थों के अनुसार अयनों (सूर्य के उत्तरायण एवं दक्षिणायण) के प्रथम दिन, सूर्य-चन्द्र ग्रहण, अमावस्या, तिथिक्षय, विषुव (जब रात दिन बराबर हों) व्यतिपात, द्वादशी, संक्रांति, पूर्णिमा आदि हैं। इसके अलावा विशिष्ट अवसरों पर जो दान दिये जाते हैं वे पशु-दान

पुस्तक-दान, ग्रह शांति के लिए दान, आरोग्यशाला की स्थापना शिक्षण संस्थान की स्थापना आदि हैं।

शिलान्यास एवं प्रतिष्ठा–

हर प्रकार का कार्य समारंभ करने को विशिष्ट अवसर मानते हुए उसका विधिवत् शास्त्रीय रूप से शिलान्यास कराया जाता है। कतिपय बड़े कार्यों के शिलान्यास महान पुरुषों से कराये जाते हैं। जब ऐसा कार्य पूर्ण हो जाता है तब उसके उपयोग करने से पहले उद्‌घाटन कराये जाने का रिवाज भी है। उद्‌घाटन के अवसर पर उत्सव का आयोजन किया जाता है। बड़े कार्यों के उद्‌घाटन महान व्यक्तियों के हाथों कराये जाते हैं।

शकुन—

शकुनों को यहाँ बहुत माना जाता है। घर से बाहर जाते वक्त शकुनों का विशेष ख्याल रखा जाता है। यदि घर से बाहर जाते वक्त शकुन अच्छे न हों तो लोग वापस लौट आते हैं। और जब तक अच्छे शकुन न हों बाहर नहीं निकलते हैं। अच्छे शकुनों में, सुहागन स्त्री, जल से भरा हुआ घड़ा, जाट, मेहतर आदि का सामने से होकर निकलना माना जाता है। बुरे शकुनों में खाली घड़ा, नगे सिर, लकड़ियों की गाड़ी, कान फड़फड़ाता हुआ कुत्ता, रास्ता काटती हुई बिल्ली, व सुनार का सामने से आना बुरा माना जाता है। । बात करते समय यदि कोई आस पास में छींक देवे, बाईं ओर तीतर या दाहिनी ओर कोचरी बोले तो अशुभ माना जाता है। राह में चलते समय गधे को बाईं ओर तथा विषधर को दाहिनी ओर टाला

जाता है।

यात्रा करते समय प्रस्थान के लिये अच्छा मुहूर्त निकलवाया जाता है। सोमवार व शनीवार को पूर्व की ओर यात्रा नहीं की जाती है। अमावस्या व बुधवार को किसी भी ओर की यात्रा करना अच्छा नही समझा जाता है। यात्रा के लिये प्रस्थान करते वक्त दूध नहीं पिया जाता है और न पापड ही खाया जाता है। उस वक्त गुड़ और दही खाना अच्छा माना जाता है।

मंगलवार व शनिवार को बाल नहीं कटवाये जाते हैं। इन दिनों दाढी भी नहीं बनवाई जाती है। शनिवार व रविवार को नये वस्त्र नहीं पहने जाते हैं।

इस प्रकार राजस्थानी समाज में काफी अन्ध विश्वास चले आ रहे हैं शिक्षा के प्रसार से तथा विज्ञान की प्रगति के साथ साथ ऐसे अन्ध विश्वास अब कम भी होते जा रहे हैं।

पारस्परिक सम्बन्ध—

इनके अलावा राजस्थानी परम्परा का एक विशिष्ट पहलू है—साम्बन्धिक परम्परा। राजस्थान में आपसी सम्बन्ध परम्परा अति जटिल है एवं एक सम्बन्धित श्रृंखला में सैंकड़ों व्यक्ति होते हैं। बाप बेटे, बहु सासु, ननद भाभी, साला बहनोई, मौसा, फूफा आदि की परम्परा सिर्फ श्रुतियों के आधार पर ही चली जा रही हैं क्योंकि कभी किसी ने इस ओर प्रयास कर इन्हें लिपिबद्ध करने की चेष्टा नहीं की है। सिर्फ व्यावहारिक श्रुतियकों आधार पर ये रिश्ते कायम रहते चले आ रहे हैं। संलग्न सारणियां हमने आपसी सम्बन्ध रिवाज बताने के लिये तैयार की हैं। ऐसा हो सकता है कि

कहीं इन सारणियों को देखने के पश्चात आप अपने पारिवारिक सम्बन्धियों को जानने की चेष्टा करें। सम्बन्ध संक्षेप करने हेतु हमने इस सारिणी में क्रमश: बाप-मां-पहला पुत्र (बेटा १) दूसरी बेटी (बेटी २) तीसरा पुत्र (पुत्र ३) चौथी बेटी (बेटी ४) को मूलतः शामिल करते हुए सम्बन्ध स्थापित किये हैं—

— :०: —

सम्बन्ध सारणी १

सम्बन्ध पुरुष वर्ग

श्री	पिता	पुत्र-१	पुत्र-२	पुत्री-१ का पति	पुत्री-२ का पति	पुत्री-१ का पुत्र	पुत्री-२ का पुत्र	पुत्र-१ का पुत्र	पुत्र-२ पुत्र
पुत्र-१	बाप बेटा	—	भाई भाई	साला बहनोई	साला बहनोई	मामा भानजा	मामा भानजा	बाप बेटे	चचेरा भाई
पुत्र-२	,,	भाई भाई	—	,,	,,	,,	,,	चाचा भतीजा	बाप बेटे
पुत्री का पति	श्वसुर जवाई	साला बहनोई	साला बहनोई	—	साढू साढू	बाप बेटा	मौसा भानजा	फूफा भतीजा	फूफा भतीजा
पुत्री-२ का पति	,,	,,	,,	साढू साढू	—	मौसा भानजा	बाप बेटा	,,	,,
पुत्री-१ का पुत्र	दौहित्र नाना	मामा भानजा	मामा भानजा	बाप बेटे	मौसा भानजा	—	मौसेरे भाई	ममेरे भाई	ममेरे भाई
पुत्री-२ का पुत्र	दौहित्री नान	,,	,,	मौसा भानजा	बाप बेटे	मौसेरे भाई	—	,,	,,

पुत्र-१ का पुत्र	दादा पोता	बाप बेटा	चाचा भतीजा	फूफा भतीजा	फूफा भतीजा	ममेरा भाई	ममेरा भाई	—	चचेरा भाई
पुत्र-२ का पुत्र	दादा पोता	ताऊ चाचा) बेटा	बाप बेटा	,,	,,	,,	,,	चचेरा भाई	—

सम्बन्ध सारणी-२
सम्बन्ध स्त्री वर्ग

स्त्री	मां	पुत्री-१	पुत्री-२	पत्नी पुत्र-१	पत्नी पुत्र-२	पुत्री लडकी-१	पुत्री लड़की-२	लड़की पुत्र-१	लड़की पुत्र-२
पुत्री-१	मां बेटी	—	बहने	ननद भोजाई	ननद भोजाई	मां बेटा	मोसो भानजी	बूआ भतीजी	बूआ भतीजी
पुत्री-२	,,	बहने	—	,,	,,	मोसी भतीजी	मां बेटा	,,	,,
पुत्र-१ की पत्नी	सास बहू	ननद भोजाई	ननद भोजाई	—	देवरानी जेठानी	मामी नाणदी	मामी माणदी	मां बेटी	ताई बेटी
पत्नी पुत्र-२	सास बहू	,,	,,	देवरानी जेठनी	—	मामी नाणदी	,,	चाची बेटी	मां बेटी
पुत्री-१ की लड़की	नानी दोहित्री	मां बेटी	मोसी भानजी	मामी भानजी	मामी भानजी	—	मोसेरी बहन	ममेरी फूफेरी बहने	ममेरी फूफेरी बहने
लड़की पुत्री-२	नानी दोहित्री	मोसी भानजी	मां बेटी	,,	,,	मोसेरी बहने	—	,,	,,

लड़की पुत्र-१	दादी पोती	बूआ भतीजी	बूआ भतीजी	मां बेटी	नानी भतीजी	पमेरी फुफेरी बहनें	ममेरी फुफेरी बहनें	—	चचेरी ताऊ बहनें
लड़की पुत्र-२	दादा पोती	,,	,,	ताई बेटी	मां बेटी	,,	,,	चचेरी ताऊ बहनें	—

सम्बन्ध सारणी ३

सम्बन्ध पुरुष-स्त्री

श्री	पिता	पुत्र-१	पुत्र-२	पुत्री-१ का पति	पुत्री-२ का पति	पुत्री-१ का पुत्र	पुत्री-२ का पुत्र	पुत्री-१ का पुत्र	पुत्र-२ का पुत्र
माता	पति पत्नि	मां बेटा	मां. बेटा	सास जमाई	सास जमाई	नानी दोहित्री	नानी दोहित्री	दादी पोता	दादी पोता
पुत्री-१	बाप बेटा	भाई बहिन	भाई बहिन	पति पत्नि	साली बहनोई	मां बेटा	मौसी भानजा	बूआ भतीजा	बूआ भतीजा
पुत्र-२	,,	,,	,,	साली बहनोई	पति पत्नि	मौसी भानजा	मां बेटा	,,	,,
पत्नि पुत्र-१	श्वसर बहू	पति पत्नी	देवर भोजाई	सालाहेली नणदोई	सालाहेली नणदोइ	मामी नाणदा	मामी नाणदा	मां बेटा	ताई भतीजा
पत्नी पुत्र-२	श्वसर बहु	जेठ बहु	पति पत्नी	,,	,,	,,	,,	चाची भतीजा	मां बेटा
लड़का पुत्री-१	नाना दौहित्री	मामा भानजी	मामा भानजी	बाप बेटी	मौसा भतीजी	भाई बहन	मौसेरे भाई बहन	ममेरा भाई फुफेरी बहन	ममेरा भाई फुफेरी बहन

लड़का	,,	,,	,,	मौसा	बाप	मौसेरे भाई	भाई	ममेरा भाई	,,
पुत्री-२				भतीजी	बेटी	बहन	बहन	फुफेरी बहन	
लड़की	दादा	बाप	चाचा	फूफा	फूफा	ममेरी फुफेरी	ममेरा फुफेरी	भाई	चचेरा ताऊ
पुत्र-१	पोती	बेटी	भतीजी	भतीजी	भतीजी	बहने	बहने	बहन	भाई बहन
लड़की	दादा	ताऊ	बाप	,,	,,	,,	,,	चचेरा ताऊ	भाई बहन
पुत्र-२	पोती	बेटी	बेटी					भाई बहन	

टिप्पणी सारणी सम्बन्धी—

पुत्र १ सबसे बड़ा उससे छोटी -पुत्री १ तत्पश्चात पुत्र २ एवं सबसे छोटे भाई को पुत्र २ से संकेत किया गया है।

सन्देह नहीं कि रीति रस्मों में सम्बन्धों के सम्बोधन जिस ढंग से माने गये हैं वे बहुत पेचीदा हैं एवं ये श्रुतियों से ही पारस्परिक रूप में चले आ रहे हैं। दो शादी शुदा भाई जिनके एक एक लड़का और एक एक लड़की, इसी प्रकार दो शादी शुदा बहनें, जिनके एक एक लड़का और एक एक लड़की के आपसी सम्बन्ध उपरोक्त सारणियों में बताये गये हैं।

राजस्थान में प्रचलित सामान्य रीति रिवाजों के प्रसंग में हम उन परम्परागत मान्यताओं का उल्लेख करना भी आवश्यक समझते हैं जिन्होंने विशिष्टता कायम की है। ये मान्यतायें न केवल राजस्थान में ही बल्कि हिन्दुस्तान के ज्यादातर हिस्से में भी प्रचलित हैं। वैसे इनमें अन्ध विश्वास भी काफी मात्रा में है। समाज में शिक्षा के प्रसार के साथ अन्ध विश्वास में में कमी अवश्य आ गई है परन्तु राजस्थान में ये अन्ध विश्वास अभी तक मौजूद हैं। यहां भूत प्रेत, माया जाल, जादू टोना, जंतर मंतर आदि का प्रभाव अधिक है। यहां पुरुष एव महिलाएं प्रातः काल जल्दी उठ कर अपने आवश्यक कार्यों से निवृत्त होकर मन्दिरों में ईश्वर दर्शन हेतु निकल पड़ते हैं। प्रायः घर में एक छोटा सा पूजा स्थल भी रखते हैं जिसमें प्रमुख देवी देवताओं की मूर्तियां व तस्वीरें रखी जाती हैं। प्रातः उठ कर उनका दर्शन करना आवश्यक समझा जाता है। हर स्त्री पुरुष किसी न किसी देवता को मुख्य रूप से मानता है जिसे वह अपना इष्ट देव कह कर पुकारता है। प्रत्येक अच्छे बुरे कार्य को आरम्भ करने पर वह अपने मन में उस इष्टदेव

का स्मरण करता है एवं कार्य को सफल बनाने की कामना करता है। प्रायः परिवारों के पास गीता, रामायण, महाभारत आदि धार्मिक ग्रन्थ होते हैं जिनका प्रतिदिन नियमित रूप से पाठ किया जाता है।

यहां प्रत्येक त्यौहार के मनाने के विशेष धार्मिक रिवाजों का चलन है जिसके अनुसार उस दिन पूजन आदि होते हैं। ये रीति रिवाज व मान्यताएं परम्परा से चली आ रही हैं जिन्हे उसी प्रकार चालू रखना आवश्यक समझा जाता है।

महीने की प्रत्येक पूर्णमासी के दिन यहां सत्यनारायण की कथा सुनी जाती हैं और व्रत रखा जाता है। इसी प्रकार प्रत्येक एकादशी के दिन ज्यादातर स्त्रियां उपवास रखती हैं। यहां पुरुषों व स्त्रियों में सोमवार, मंगलवार व शनिवार इन तीनों दिनों में किसी एक दिन एक वक्त भोजन करने का भी रिवाज है।

इन मान्यताओं के साथ साथ जैसा कि पहले कहा जा चुका है यहां जन्तर मन्तर आदि में भी बहुत विश्वास रखा जाता है। कई बिमारियों में इन जन्तरों का आश्रय लिया जाता है। जिनके उच्चारण से या उन जन्तरों को कागज के टुकड़े पर लिखकर चान्दी या तांबें की छोटी डिबिया (तावीज) में डालकर हाथ या गले पर बांधा जाता है। सांप, बिच्छु आदि के काटने पर कुछ मंत्रों का सहारा लेकर उनके जहर को उतारने की भी प्रथा है। ज्वर, निकाला, शीतला आदि बीमारियो में भी जंतर मंतर से इलाज कराया जाता है। इसके साथ साथ किसी विशेष बीमारी के लिये विशेष देवी देवताओं की पूजा, प्रार्थना भी की जाती है। उसी प्रार्थना में उपचार भी खोजा जाता है। शीतला माई के गीत गाए जाने

हैं। इकतरा बुखार की कथा, खूल खुलिए का रातिजगा, निकाले का जागरण आदि उपचार, प्रथा हैं। उस समय गीतों व भजनों के रूप में इन देवताओं की पूजा की जाती है।

जिन औरतों के सन्तान नहीं होती हैं वे संतान प्राप्ति के लिये देवी देवताओं की मिन्नतें करती हैं। जंतरों को भी काम में लाती हैं। जिस दम्पत्ति के सन्तान जिन्दा नहीं रहती वे भी कई अन्ध विश्वासों द्वारा उनके चिरायु होने की कामना करती हैं। पैदा होने वाले बच्चों के नाक में छिद्र करवा दिया जाता है जिसमें नथ, बाली अथवा नाक का लोंग पहनाते हैं। ऐसे बच्चों के नाम नथमल या नाथूराम आदि रखने का रिवाज है। ऐसे बच्चों के वस्त्र घरके खर्च से न बनाए जाकर रिश्तेदारों से प्राप्त कर पहनाये जाते हैं।

पुत्र जन्म की अभिलाषा रखने वाली महिलाए 'भैरवजी' को मनाया करती हैं। वे भैरवजी के मन्दिर में जाकर पुत्र कामना की मिन्नतें मानती हैं। मन्दिर के पास के खेजड़ी के वृक्ष के ऊपर अपना नित्य काम आने वाले वस्त्रों में से कोई वस्त्र रख देती हैं। मिन्नत करते समय की एक लोकोक्ति का नमूना निम्न प्रकार है-

भैरुंजी कांठे रे गंवा री चाढ़ लापसी,
मांय तो गायां रो देशी घीव,

कासी रा वासी एक अरज म्हारी साम्हजो,

भैरुंजी कदैयन भीजो म्हारी दूधां कांचली,
भैरुंजी कदै न भिज्यो म्हारो कांधो लाल सूं
कासी रा वासी एक पुत्र त्रिन कुल में वांझणी।

राजस्थान की भोली भाली स्त्री यह जानकरी न रखें कि

पुत्र पंदा होने में किन परिस्थितियों की आवश्यकता है तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। उपरोक्त गीत का सार यह है कि, 'हे काशी के वासी मैं आपके काठी लापसी (गेंहू को पीसा जाकर उन्हें पानी में पकाया जाता है और गुड़ अथवा शक्कर से पकते वक्त ही मीठा कर दिया जाता है ऐसे पकवान में जब पानी की मात्रा अधिक रह जाती है तो मीठा दलिया एवं जब पानी की मात्रा काफी कम रहती है तो काठी लपसी कहलाता है।) का भोग लगाऊंगी जिसमें गायों का शुद्ध देशी घी होगा। बदले में मेरी सिर्फ इतनी कामना पूरी कर दे कि मेरे स्तनों में अभी तक जो दूध नहीं बहा है एव बच्चे की राल से मेरा कंधा नहीं भीगा है एव बिना एक पुत्र के कुल में बांझ कहला रही हूं। अतः वह कमी पूर्ण करदें।

प्रातों में अन्ध विश्वास के सम्बन्ध में राजस्थानी मान्यता के रूप का अन्दाज हमें तब मालूम होता है जब हम देखते हैं कि यहां परिवार का मृत व्यक्ति भी किसी न किसी प्रकार परिवार के बीच जिन्दा रहता है। ऐसी आत्मा को "पितरजी" कहकर पुकारा जाता है जो स्पष्टतः संस्कृत भाषा के पितृ शब्द का अपभ्रंश है। सुहागिन स्त्री को मृत्यु के बाद पितरानी का दर्जा मिलता है। इनकी पूजा भी की जाती है। सामान्यतः हर अमावस्या को जलगृह में इन पितरों की पूजा की जाती है। ऐसा मान्यता है कि इन पितरों की स्मृति से असाध्य कार्य सिद्ध हो सकते हैं अतः स्मृति स्वरूप गीत गाये जाते हैं। परिवार की औरतें इकट्ठी होकर पितराणी से काल्पनिक बात चीत करते हुए कहती हैं:—

कोठे से आया हो पितराणी प्यारा पावणा,
कोठे तो लिये छैं मुकाम

सुरगापथ से आया हो म्हारो जीजी बाई पावणा
थारे घर लियो छ मुकाम
चौकी तो चावल ओ वड़ भावन थान ऊजला
दूध पखांरा ला थारे पांव-

अर्थात. औरतें इस दैवी शक्ति से पूछती हैं कि आपका आगमन कहां से हुआ और आपने कहां विश्राम लिया है। तथाकथित पितराणी (दैवी शक्ति) का जवाब है कि वह स्वर्ग पथ से आई है एव आप के घर पर ही विश्राम ले रखा है। जिस पर औरतें उन्हें चौकी पर बिराजमान होने को आमन्त्रित करती हैं तथा स्वच्छ चावलों से सम्मान करती हैं एवं दूध से उनके पांव धोती हैं। स्पष्ट है कि पितर पितराणी के प्रति यह सम्मान केवल स्मृति बनाये रखने के लिए ही है।

नारी समाज

राजस्थान के रीति रिवाजों की चर्चा करते वक्त यहां की नारी को भुलाया नहीं जा सकता है। यदि कहा जाय कि नारी ही रीति रिवाज को चलाने में अग्रणी होती हैं तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। अतः राजस्थानी समाज में नारी के स्थान पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक हो जाता है।

समाज और नारी-

श्रुतिकार मनु ने तो नारी को बहुत ऊंचा दर्जा देते हुये लिखा है कि "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।" नारी

के प्रति मनु के विश्वास को राजस्थानी समाज में देखा जाता है। नारी के प्रति मनु ने लिखा है कि—

यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफला : क्रिया।

अर्थात जिस कुल में नारी की पूजा नहीं होती है वहां समस्त कर्म निष्फल जाते हैं। जहां नारी को दुख हो उस कुल का शीघ्र नाश होता है। जिस कुल में नारी प्रसन्न रहती है वह उन्नति करता जाता है।

मनु के विचार ईसा की दूसरी शताब्दी के हैं पर अब भी यह वाक्य कितना खरा उतरता है यह इसी बात से समझ में आजाती है कि आज भी नारी सांस्कृतिक परम्पराओं को जिन्दा रखने में अग्रणी है। पारिवारिक जीवन को सुखी अथवा दुखी बनाने की जो क्षमता नारियों में है वह निश्चय ही पुरुषों में नहीं है। विभिन्न रूपों में नारी जीवन के हर पहलू में पुरुष से सहयोग करती है। मा के रूप में संतानोत्पत्ति और उनका पालन पोषण, बहिन के रूप में भाई से प्रेम का उपकरण, पत्नि के रूप में जीवन सहचरी, पुत्री के रूप में अलौकिक प्रेम का दर्शन कराने वाली राजस्थानी नारी का कोई दूसरा उदाहरण कम ही मिलता है। इस प्रसंग में हम यह नहीं भुला सकते कि नारी की इज्जत करते हुए भी राजस्थानी सांस्कृतिक परम्पराओं ने उसे ऐसी रूढ़ियों में जकड़ दिया है कि वर्तमान में भी जहां अन्य क्षेत्रों में घर और परिवार के मामलों के अलावा भी नारी पुरुष का हाथ बटाती है-वहां राजस्थान में यह तथा कथित प्रगति कुंठित है। नारी से सम्बन्धित पुराणों के सभी स्त्री धर्म राजस्थान में पुराणों के सभी धर्म लागू रहे, जिनके अनुसार नारी पति को देवता के समान मानती है। स्कंद पुराण में पतिव्रता स्त्री के हेतु लिखा है।

कि पत्नी को पति का नाम न लेना चाहिये' ऐसे चाल चलन से पति की आयु घटती है। उसे दूसरे पुरुष का नाम भी नहीं लेना चाहिये, चाहे पति उसे उच्च स्वर से अपराधी क्यों न सिद्ध कर रहा हो, पीटी जाने पर भी उसे जोर से न रोना चाहिये, उसे हंस मुख ही रहना चाहिये। पतिव्रता को हल्दी, कुंकुम, सिन्दूर, अंजन, कंचुकी (चोली), ताम्बूल, शुभ आभूषणों का व्यवहार करना चाहिये तथा केशों को संवार कर रखना चाहिये। पद्म पुराण के अनुसार तो वह स्त्री पतिव्रता है जो कार्य में दासी की भांति, संभोग में अप्सरा जैसी, भोजन में मां की भांति तथा विपत्ति में मन्त्री की भांति अच्छी राय देने वाली हो। स्मृति ग्रंथो में पत्नियों की पति भक्ति एवं नियमों के पालन आदि के बारे में विस्तार से व्याख्या की गई है। मनु लिखता है 'जो पत्नि विचार एवं कार्य से पति के प्रति सत्य रहती है, वह पति के साथ स्वर्ग लोक प्राप्त करती है और पतिव्रता कही जाती है। जो पति के प्रति असत्य रहती है वह निंदा की पात्र होती है। आगे के जन्म में सियारिन के रूप में उत्पन्न होती है और भयंकर रागों से पीड़ित रहती है।' पत्नी को पति की अर्धांगिनी कहा गया है।

इस प्रकार नारी को पुरुष की आन्तरिक क्रियाओं में सहायक माना गया और इसके बदले से पुरुष द्वारा नारी को आदर और सम्भोग मिलता है। जैसा कि बताया गया है नारी के लिये केवल उसका पति ही सर्वस्व माना गया गया है। यह परम्परा इतनी रूढ हुई कि पति की मृत्यु के बाद नारी का जिन्दा रहना मात्र भी व्यर्थ समझा जाने लगा। इसी कारण से "सती प्रथा" का आविर्भाव हुआ। चित्तौड़ तथा अन्य स्थानों पर राजपुत्रियों, रानियों आदि द्वारा किये गए जोहर

की कहानियां अभी भी ताजी हैं। मुसलमानों के क्रूर हाथों में पड़ने तथा बलात्कार सहने की अपेक्षा राजपूतों की रानियां पुत्रियां तथा अन्य राजपूत नारियां अपने को अग्नि में झोंक देती थी।

स्त्री के विधवा हो जाने पर उसकी स्थिति अत्यन्त शोचनीय अब भी हो जाती है। उसका भाग्य किसी भी स्थिति में स्पृहणीय नहीं माना जाता। वह अमंगल सूचक मानी जाती है और किसी भी उत्सव में यथा विवाह और अन्य मांगलिक अवसरों पर सक्रिय भाग नहीं ले सकती है।

वर्णाक्रम में भी जाति व्यवस्था ने इतनी कठोरता अपनाई कि आपसी सम्बन्ध क्षेत्र सीमित होते गए। सम्बन्ध क्षेत्र की सीमितता का कुफल यह हुआ कि किसी भी कन्या के लिये वर के ढूंढ़े जाने में अत्यधिक कठिनाइयां आने लगीं। राजनैतिक आपत्तियों के समय पुरुष वर्ग का महत्त्व बढ़ गया एवं उसकी आवश्यकता चरम सीमा तक पहुँच गई। ऐसे समय में नारी का महत्व कम होने लगा क्योंकि उसका कर्मक्षेत्र संकटकाल में अति संकुचित हो गया तथा मान मर्यादा का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत हो गया। फलस्वरूप कन्या का जन्म भी अनावश्यक महसूस किया जाने लगा और चिन्ता का विषय बन गया। ऐसी परिस्थितियों में कन्या को मार डालने का प्रचलन प्रारम्भ हो गया था जो एक लम्बे अर्से तक चलता रहा। पिछले कुछ दशकों से ही यह प्रथा कानून द्वारा बन्द की गई है। इसी लिए कुछ विशेष परिस्थितियां पुत्र जन्म के समय उल्लास मनाए जाने के कारणों में सहायक बनीं।

ऐसी कनिष्ठ महत्वहीनताओं के कारण महिलाओं के

मानसिक एवं आध्यात्मिक उत्थान के अवसर भी कम आये। स्वभावतः नारी समाज को संकुचित विचारों की एवं पुरातन-वादी समझा जाने लगा। अंग्रेजी शासन से राजस्थानी नारी समाज को मानसिक रूप से इसीलिए घृणा थी कि वे इस प्रदेश की पुरातन प्रथाओं का आदर नहीं करते थे न कि इस ख्याल से कि वे देश को गुलाम बनाए हुए हैं। नारी समाज में कोई राजनैतिक चेतना नही थी। वे पुरातनवादी विचारधाराओं की होने के कारण साधु एवं फकीर के प्रति अच्छे भाव रखती आई हैं। साधु और फकीर अंग्रेजी काल में अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह के प्रचार कार्य में मुख्य रूप से भाग लेते थे क्यों कि वे समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन ला रहे थे। प्रतिफल यह हुआ कि कई स्थानों पर नारी समाज ने अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया था। उदाहरणतः सीकर का विद्रोह, जोधपुर में स्त्रियों का आंदोलन आदि। जीनत महल ने तो उस्मानखां, सार्दुलखां और नवाब टोंक की बेगमों को तांत्याटोपे को मदद देने के लिये खास तौर से पत्र लिखे थे। बीकानेर महारानी ने भी नाना साहब को इसी कारण सहायता दी थी।

पर्दा—

स्त्रियों में पर्दे की कुप्रथा होने के कारण वे समाज में खुले रूप से बाहर आने में सदा असमर्थ रही हैं। बतलाया जाता है कि भारत में मुस्लिम शासन के पदार्पण करने के उप-रान्त ही पर्दे का प्रचलन हुआ। मुस्लिम जाति में पर्दे की प्रथा का कारण यह रहा कि उस समुदाय के अन्दर विजेता शत्रु का प्रभाव न घुस पाता था। इसी उद्देश्य को लेकर इस्लाम के

आचार्यों ने नारी जाति को बुर्के के अन्दर इस प्रकार रखने की व्यवस्था की कि उसके अंग प्रत्यंगों और भाव भंगिमाओं पर गैर व्यक्तियों की दृष्टि न पड़े। राजस्थान में चूंकि मुस्लिम शासन का अत्यधिक प्रभाव रहा, अतः इस प्रथा का समावेश होना जरूरी था। प्राचीन भारत में भी पर्दा प्रथा होने का प्रसंग कई स्थानों पर पाया जाता है। बाणभट्ट की कादम्बरी में पत्रलेखा को लाल रंग के अवगुंठन के साथ चित्रित किया गया है, शाकुन्तल में दुष्यन्त की राज्य सभा में लाई गई शकुन्तला को अवगुंठन डाले चित्रित किया गया है। महाभारत के शल्य पर्व में कौरवों की स्त्रियों को पर्दा किये बताया गया है। वाचस्पति की शांख्यतत्व कौमुदी से प्रकट होता है कि उच्च कुल की नारियां पर्दा करके ही बाहर निकलती थीं। इसमें कोई संदेह नहीं कि पर्दा प्रथा जिस उद्देश्य से शुरू हुई वह तो समयानुकूल ही थी एवं आदर्श थी, परन्तु उसमें रूढ़ि के समावेश से कई बुराइयों का उद्भव हो गया और यह प्रथा कुप्रथा बन गई। वास्तव में पर्दे को लज्जा का प्रतीक मानकर ही चला जाना चाहिए न कि रूढ़ि की दीवार। राजस्थान में पर्दा प्रथा का काफी प्रचलन है। स्त्रियां सामान्यतः, ससुराल में ही अपने से बड़े स्त्री पुरुषों से पर्दा करती हैं। राजपूतों व महाजनों में ज्यादा पर्दे का रिवाज है। पर्दा करना अब तक इज्जत का प्रतीक माना जाता था। यों अब स्वतन्त्रता के बाद पर्दा प्रथा समाप्त होती जा रही है।

विवाह विच्छेद और विधवा विवाह--

पहले नारियां पर पुरुष से पर्दा करती थीं। इसका तात्पर्य यह था कि वह अपने पुरुष के अलावा किसी दूसरे पुरुष को

स्वयं न तो नजरों में हैं और न खुद के ही कोई दूसरा पुरुष ध्यान में है। इस प्रकार की पति भक्ति या पति पूजा ने समाज को एक भयानक परम्परा का प्रतिदान दिया। वह था पति की मृत्यु के बाद विधवा का उम्र भर वैधव्य काटना अथवा अयोग्य पति के साथ भी जैसे तैसे जीवन व्यतीत करना। ऐसी औरत का जो अपने यौवन काल में ही अपुत्रवती रहते हुए भी पति से हाथ धो बैठी हो, सामाजिक महत्व भी कम हो जाता है एवं उसकी देख रेख भी कोई नहीं करता है। इस प्रकार के कठिन वैधव्य जीवन प्रथा से कोई अच्छे परिणाम नहीं निकले हैं, अपितु इससे व्यभिचार में ही वृद्धि हुई। इससे निराकरण पाने के लिए समाज ने हल निकाले जाने की आवश्यकता भी महसूस की। परिणाम स्वरूप विधवाविवाह, नाता आदि की प्रथा राजस्थान की कई जातियों ने स्वीकार की। विधवा विवाह किसी विधवा का पुनर्विवाह ही होना है। जिसमें पति के मरने के बाद वह किसी अन्य योग्य पुरुष से विधिवत शादी कर उसके साथ जीवन निर्वाह करती है। जबकि 'नाता' में यह आवश्यक नहीं है कि पुनर्विवाह करने वाली विधवा ही हो। इस प्रसंग में हम विवाह विच्छेद परम्परा को भी नहीं भुला सकते हैं। विवाह विच्छेद में पति पत्नि में पारस्परिक विद्वेष तथा अन्य कारणों से कानूनी रूप से अलग हो जाना विवाह विच्छेद कहलाता है। उपरोक्त वर्णित नारी के आशंकित कठिन जीवन ने राजस्थानी समाज मे एक ऐसी भावना को जन्म दिया कि यहां पर कन्याओं की उत्पत्ति पर लोग प्रसन्न नहीं होते हैं। ज्यादातर तो उस कन्या के नामकरण संस्कार तथा जन्मोत्सव तक को नहीं मनाते हैं। कतिपय घरानों में ही कन्याओं की सेवा सुश्रूषा का ध्यान रखा जाता है, अन्यथा वे लापर-

वाही से ही पाली जाती है। यह आम धारणा है कि कन्यायें अमर होती हैं वे जल्दी नहीं मरती हैं। छोटी सी कन्या से ही ज्यादा से ज्यादा काम करवाने की चेष्टा की जाती है। बारह चौदह साल की उम्र में तो इनका विवाह भी कर दिया जाता है। किसी घर की बहु बनती हैं तो वहां पर देवरानियां, जेठानियां नणदों आदि से उनका वास्ता पड़ता है। दो चार पांच वर्ष जब तक वे नई रहती हैं उन्हें सबसे ज्यादा कार्य उस घर में करना पड़ता है। पीहर काल में अनुभूत स्वतन्त्रता एवं अल्हड़ता का पूर्ण अपहरण ससुराल में हो जाता है। प्रातः काल सबसे पहले उठना पड़ता है तथा रात्रि में सबके बाद सोना होता है। काम बिगड़ने पर अनेकों ताने भी सुनने पड़ते हैं। सास और बहु के आपसी सुन्दर व्यवहार बहुत कम घरों में देखे जाते हैं। सामाजिक संगठन और परम्परायें ही कुछ इस प्रकार की बन गई हैं कि सास चाहती है कि बहू नौकरानी की भांति काम करे जैसा कि उसकी सास ने भी ऐसा ही चाहा था और वह बहू बार बार फटकारने पर भी जवाब न दे। नई नवेली शुरू शुरू में सारा काम भी करती है फटकार भी सुनती है परन्तु वे फटकारें जब उसके मायके के सम्बन्ध में पड़ने लग जाती हैं तो उसके लिए असह्य भी हो जाती हैं। सास क्रोध में बहू को "रांड" कह सकती है तो शायद वह चुप भी रह जाय परन्तु अगर उसकी भाभी को "रांड" होने का वरदान दे दे तो वह उसके लिए असह्य हो जाता है। सम्भवतः एक आध बार वह भय से चुप भी रह जाय पर बार बार के ऐसे प्रसंग पारिवारिक कलह के कारण बन जाया करते हैं। तीज, गणगोर आदि ऐसे पर्व हैं जबकि उसके मायके से कुछ वस्तुएं उपहार स्वरुप हैसियत के अनुसार आती हैं परन्तु स्या-

दातर्र वह ऐसे उपहार को कम समझते हैं और ऐसे अवसरों पर सास-बहु, ननद भौजाई या देवरानी-जेठानी आदि का वाक-युद्ध हो ही जाया करता है।

सास और बहु के आपसी सम्बन्धों पर ही ननद भोजाई के सम्बन्ध निर्भर रहते हैं। सामान्यत: ननद अपनी भौजाई के मायके से आए सामान का अधिकांश हिस्सा मांगती है। भाभियों द्वारा पूर्ण आदर दिये जाने की आकांक्षा भी वे रखती हैं। ऐसे वातावरण में असन्तुष्टता स्वाभाविक ही होती है तथा आपसी निन्दा करना आरंभ हो जाता है। ऐसे मौके पर सास और बहु का झगड़ा बढ़ाने में भी ननदें आहुति का काम करती हैं।

इधर जेठानी और देवरानियों में भी मनमुटाव के कारण पैदा हो जाते हैं जायदाद की हिस्सेदारी और पट्टेदारी के कारण दोनों में परस्पर वस्तुओं एवं कार्यों के समय वितरण के प्रश्न पर झगड़ा होता रहता है। वैसे तो हर प्रकार के झगड़े अहितकर ही होते हैं परन्तु देवरानी जेठानी के झगड़े विशेष रूप से घातक सिद्ध होते हैं। इससे भाई भाई में मन-मुटाव सदैव के लिये पैदा हो जाते हैं।

आश्चर्य की बात तो यह है कि मनमुटाव वाले घरों में भी जब कभी उत्सव वगैरह मनाए जाते हैं तब सभी स्त्रियां एकत्रित होकर गीत गाती हैं। शोक विलाप के वक्त भी साथ रुदन करती हैं। सम्मिलित पर्वों में उनका मनमुटाव बाधक नहीं रहता है। यह राजस्थानी स्त्री समाज की विशेषता है।

राजस्थान की स्त्रियों का कुओं से पानी खेंचकर निकालना व लाना भी एक बड़ी विशेषता है। यहां पानी की बड़ी समस्या है। स्त्रियों को कहीं कहीं तो रात रात भर जागकर

गहरे कुओं से पानी खेंचकर निकालना पड़ता है। इसी के कारण यहां की स्त्रियां स्वस्थ एवं सुन्दर होती हैं यहां की स्त्रियों के लिये प्रसिद्ध है—

जल ऊंडा[1] थल ऊजला[2] नारी नवलवेस[3]।
पूरब पटाघट[4] नीपजे अइहो मरुधर देस॥

देस सुरंगो जल सजल, मीठा बोलै लोय।
मारू कामण[5] घर दीपण जह हर दीपइत होय॥

ऊंट मिठाई अस्तुरी, सोनो गहणो साह।
आ पांचू तो में हुते, वाह बीकाण[6] वाह॥

उदयापुर री कामणी, गोखा[7] काढै[8] गाल।
मन तो देवा रा डिगै, मिनखा कितीक वात॥

आभूषण—

आभूषण राजस्थानी औरत की जान है तथा परिवार की शान है एवं इन्ही से सम्बन्धियों में उनका मान होता है। यह यहां की स्त्रियों की धारणा है। अतः कर्जा लेकर भी आभूषण बनाये जाते हैं। ये आभूषण सोने के अलावा चांदी, पीतल, ताम्बे आदि के भी होते हैं।

राजस्थान में नख से लेकर शिख तक आभूषण पहनने का रिवाज प्रचलित है एवं अंग प्रत्यंग के अनुकूल आभूषणों की रचना की जाती है। पुरुष वर्ग हाथ की अंगूठी व गले की

१-गहरा २-उज्जवल ३-सुन्दरी ४-तलवार धारी ५-मारवाड़ (जोधपुर) की स्त्री ६-बीकानेर ७-झरोखा ८-निकाले,

कहीं के आदिवासी गहने नही पहनती हैं। लेकिन नारियों के सिर ललाट, कान, नाक, गले, बाजू, कमर, हाथ एवं उसकी अंगुलियों के अलग अलग आभूषण होते हैं। वे इस प्रकार है—

सिर पर पहनने के आभूषण

बोरला—

यह गोलाकार आभूषण सिर के आगे के भाग पर पहना जाता है।

मांग टीका या तिलक—

यह भी सिर पर ही पहना जाता है जो कि एक सुन्दर छोटे तमगे की तरह होता है जिसे जंजीर के सहारे बालों में अटका लिया जाता है, जो सामने मस्तक पर सुशोभित होता है।

रखड़ी—

यह टीके की तरह चौड़ी और गोल होती है जो माथे पर पहनी जाती है।

शीशफूल—

यह आभूषण मांग टीके की तरह माथे पर सामने भाग के पास सुशोभित होता है पर इसे मांग टीके की तरह जंजीर से बालों में न लटकाया जाकर आजू बाजू से चोटी के पास बांधा जाता है।

मैमन्द—

इसे माथे पर ही पहना जाता है तथा जंजीर के जरिये बालों में अटका रहता है।

चेहरे के आभूषण

लोंग—

यह नाक में पहनी जाती है। अंगुठी की तरह अग्रभाग में हीरा या मोती जड़ा होता है।

नथ (फिनी)—

यह भी नाक में पहनी जाती है। यह चक्राकार होती है जो कि लोंग के स्थान में ही अटकाई जाती है। इसके सौन्दर्य में वृद्धि लाने के लिये कभी कभी मोतियों की लड़ के सहारे बालों में अटका लिया जाता है। इसे सुहागिन महिलायें ही ही पहनती हैं।

बुलाक—

नाक के दोनों नकुओं के बीच छेदन करके पहनने का आभूषण केवल निम्न वर्ग की महिलायें ही पहनती हैं।

झाली और झडुआ—

ये कान में बालियों की तरह पहने जाते है, जिनमें हीरे मोती भी जड़े जाते हैं।

-कर्ण फूल-या टाप्स—

ये कानों में लोंग की तरह ही पहने जाते हैं।

ये सोने चांदी के बने होते हैं जिन्हें दांतों में जड़ा जाता है।

गले के आभूषण

ठुस्सी—

इसे गर्दन में कस कर पहना जाता है। यह सामान्यतः मोतियों से जड़ा हुआ होता है। इसे गलपटिया भी कहते हैं।

पंचलड़ी—

यह भी गलपटिये की तरह का आभूषण होता है जिसमें लड़ियां अतिरिक्त रूप में लगी होती है। इसे महल भी कहते हैं।

तिमणिया—

यह भी गर्दन का आभूषण है जिसमें सोने की पाती में मोती जड़े होते हैं।

वड़ा—

यह छोटा सा आभूषण होता है जिसे गले में डोरे से बांधा जाता है।

हंसली—

यह बीच में मोटी एवं किनारे पर पतली होती है। जिसे गले में डाला जाता है।

कंठी कण्ठहार—

बड़े बड़े मनिओं या मोतियों वाली कंठ में धारण की जाती है।

हाथों के आभूषण

पहुँची—

हाथ में घड़ी के स्थान पर इसी आकृति का आभूषण पहना जाता है।

बाजूबन्द—

कलाई से ऊपर बाजू पर पहने जाने वाला यह आभूषण हाथ की चूड़ियों से भारी होता है।

गोखरू—

स्त्रियों की कलाई में धारण किया जाने वाला कड़े के आकार का होता है।

गजरा—

कलाई पर पहना जाता है।

कांकणी—

चांदी का बना यह आभूषण स्त्रियां कलाई में धारण किया करती हैं।

अंगूठी—

यह अंगुली में पहनने का छल्ला होता है।

इसके अलावा भुजबन्द चूड़ा चूड़ी या कंगन हाथफूल और छल्ले भी हाथो में पहने जाते हैं।

करधनी—

यह कमर में पहनने के काम आती है जिसे चांदी या सोने की बनाई जाती है।

पैरों के आभूषण

छड़--

चांदी या सोने की पतली कड़ी होती है जो पांवों में पहनने के काम आती है।

अंगूठी--

पैर की उंगलियों में पहने जाने वाली जो कांसे को ढाल कर बनाई जाती है।

पायजेब--

यह चांदी या सोने की छोटे घुंघरुओं की लड़ी होती है जो पांवों मे पहनने के ही काम आती है।

टड्डा-

छड़ की तरह ही होता है। छड़ काफी हल्की होती हैं और ५-७ तक पहनी जाती है जबकि टड्डा काफी भारी होता है एवं एक पांव में एक ही पहना जाता है।

बिछुआ--

पैरों की अंगुली में उसी तरह पहनी जाती है जिस प्रकार से हाथों की अंगुली में अंगूठी।

इनके अलावा कड़े पायल लच्छे अकला आदि आभूषण भी पैरों में पहने जाते हैं।

श्रृंगार--

आभूषणों के अलावा श्रृंगार के अन्य साधन भी प्रयुक्त

किये जाते हैं यथा मेंहदी काजल वगैरह। मेंहदी तो हाथों की हथेली तथा पांवों में बड़े कलापूर्ण तरीके से लगाई जाती है। हरेक त्याहार पर्व आदि के अवसर पर अथवा गमी के मौके के अलावा पीहर या ससुराल जाते वक्त प्रत्येक सोहागिन मेंहदी का प्रयोग करती है। पिसी हुई मेंहदी को पानी में घोलकर दो एक घंटा पड़ा रहने दिया जाता। जब इस घोल में रंग आ जाता है तब इसका प्रयोग किया जाता है। अनेक बार मेंहदी का चमकीला सुर्ख रंग लाने के किये दो तीन बूंद केरोसिन तेल डालदिया जाता है। जो जो महिलाएं मेंहदी लगाती हैं वे वास्तव में बहुत महनत करती हैं–हथेलियों पर और पैरों पर नाना प्रकार की चित्रकारी करती हैं। नाखून मेंहदी की लाली से संजोए जाते हैं। जब मेंहदी आधी सूख जाती है तो नीबू काटकर और उस पर चीनी छिड़क कर मेंहदी पर उसके रसको डाला जाता है। जब मेंहदी बिलकुल सूख जाती है तो हाथ से उसे साफ कर सरसों के तेल से साफ कर लिया जाता है। यह स्त्री के सौभाग्य का प्रतीक मानी जाती है।

अल्पना—

राजस्थानी समाज में अल्पना का भी विशेष प्रचार है। अल्पना का सम्बन्ध तीज त्यौहारों और उत्सवों से बहुत गहरा है। यहां तक कि जब तक ऐसे अवसरों पर अल्पना और सतिए न मांढे जाएं त्यौहार शुभ नहीं माने जाते हैं। त्यौहारों पर महिलाएं अपनी झोंपड़ियों के आगे या घरों के चौक में नाना प्रकार के चित्र बनाती है। मिट्टी के बर्तनों पर भी अल्पनाएं बनाई जाती हैं। अल्पना की कला सीखने

शिक्षा तो मां से बेटी को व पाठशाला में नही जाना पड़ता है बल्कि यह घर की प्रौढ़ाओं से या बालिकाओं के संसर्ग में प्राप्त हो जाती है। कल्पना के सहारे यह विद्या विकसित होती जाती है। इसलिये वे जन्म, शादी, विवाह आदि का कोई उत्सव और होली, दिवाली, दशहरा, कृष्णाष्टमी आदि का कोई पर्व अल्पना बनाए बिना नहीं जाने देती।

— :o: —